दादा भगवान कथित

आप्तवाणी

श्रेणी-१३ (उत्तरार्ध)

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिंदी अनुवाद : महात्मागण

आप्तवाणी-१३
(उत्तरार्ध)

[1] प्रज्ञा - 1 से 81

[2.1] राग-द्वेष - 82 से 104

[2.2] पसंद-नापसंद - 105 से 143

[2.4] प्रशस्त राग - 144 से 154

आप्तवाणी-१३ (उत्तरार्ध)

संपादकीय

आत्मार्थियों ने आत्मा से संबंधित अनेक बातें अनेक बार सुनी होंगी, पढ़ी भी होंगी लेकिन उसकी अनुभूति एक गुह्यतम चीज़ है! आत्मानुभूति के साथ-साथ पूर्णाहुति की प्राप्ति के लिए अनेक चीज़ें जानने की ज़रूरत पड़ती है जैसे कि प्रकृति का साइन्स, *पुद्गल* को देखना और जानना, कर्मों का विज्ञान, प्रज्ञा का कार्य, राग-द्वेष, कषाय, आत्मा की निरालंब दशा, केवलज्ञान की दशा व आत्मा और इन स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के तमाम रहस्यों का हल, जो मूल दशा तक पहुँचने के लिए माइल स्टोन के रूप में काम आते हैं। जब तक यह संपूर्ण रूप से, सर्वांग रूप से दृष्टि में, अनुभव में न आ जाए तब तक आत्मविज्ञान की पूर्णाहुति प्राप्त नहीं की जा सकती। इन तमाम रहस्यों का स्पष्टीकरण संपूर्ण अनुभवी आत्मविज्ञानी के अलावा और कौन दे सकता है?

पूर्व काल में हुए ज्ञानी जो कहकर गए हैं, वह शब्दों में रह गया है, शास्त्रों में रह गया है और उन्होंने देशकाल के अधीन कहा था, जो काफी कुछ आज के देशकाल के अधीन समझ और अनुभव में फिट नहीं होता। इसलिए कुदरत के अद्भुत नज़राने के रूप में हम सब को इस काल में आत्मविज्ञानी अक्रमविज्ञानी परम पूज्य दादाश्री के अंदर पूर्णरूप से प्रकट हुए 'दादा भगवान' को स्पर्श करके निकली हुई पूर्ण अनुभव सिद्ध वाणी का उपहार मिला है।

परम पूज्य दादाश्री ने कभी भी हाथ में कलम नहीं ली थी। मात्र

उनके मुखारविंद से, उनके अनुसार टेपरिकॉर्डर में से मालिकी रहित स्यादवाद वाणी, निमित्त मिलते ही देशना के रूप में निकलने लगती थी! उन्हें ऑडियो केसेट में रिकॉर्ड करके, संकलन करके सुज्ञ साधकों तक पहुँचाने के प्रयास हुए हैं। उनमें से आप्तवाणियों का अनमोल ग्रंथ संग्रह प्रकाशित हुआ है। आप्तवाणी के बारह ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं और अभी तेरहवाँ ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है, जो पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में विभाजित किया गया है।

पूज्य दादाश्री की वाणी सहजरूप से निमित्ताधीन निकलती थी। प्रत्यक्ष में हर किसी को यथार्थ रूप से समझ में आ जाती थी लेकिन बाद में उसे ग्रंथ में संकलित करना कठिन हो जाता है और उससे भी अधिक कठिन हो जाता है सुज्ञ पाठकों को उसे यथार्थ रूप से समझना! कितनी ही बार अर्थांतर हो जाने की वजह से दिशा भ्रमित हो सकते हैं या फिर दिशामूढ़ हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि शास्त्र में पढ़ा, 'जा, तेरी मम्मी को बुला ला।' अब यहाँ पर कौन किसकी मम्मी के लिए कह रहा है उस रेफरन्स (संदर्भ) को पाठक को खुद ही समझना है। उसमें खुद की पत्नी को बुलाने की बात भी हो सकती है या फिर किसी और की पत्नी की भी! यदि समझने में थोड़ा फर्क हो जाए तो?!

इस प्रकार आत्म तत्त्व या विश्व के सनातन तत्त्व अवर्णनीय और अवक्तव्य हैं। ज्ञानीपुरुष दादाश्री बहुत-बहुत ऊँचाइयों पर से नीचे उतरकर उसे शब्दों में लाकर हमें समझाते हैं। जिस 'दृष्टि' की बात है, उसी 'दृष्टि' से प्राप्ति हो सकती है, न कि शब्दों से। 'मूल दृष्टि', जो आत्म सम्मुखता प्राप्ति की बात है, वह शब्द में कैसे आ सकती है? वह तो परम पूज्य दादाश्री का अक्रम विज्ञान जिस-जिस महा-महा पुण्यात्माओं ने प्राप्त किया है, प्रज्ञा जागृत होने की वजह से उन्हें पढ़ते ही समझ में आ जाता है। फिर भी कितनी ही गुह्यतम बातें समकिती महात्माओं की समझ से भी बाहर रहती है। या फिर कहीं पर विरोधाभास लगता है। वास्तव में ज्ञानी का एक भी शब्द कभी भी विरोधाभासी नहीं होता। इसीलिए उसकी अवमानना मत करना। उसे समझने के लिए उनके द्वारा

ओथोराइस्ड पर्सन (अधिकारी) से स्पष्टीकरण प्राप्त कर लेना चाहिए या फिर पेन्डिंग रखो। जब खुद उस श्रेणी तक पहुँचेगा तब अपने आप समझ में आ जाएगा!

उदाहरण के तौर पर रेल्वे स्टेशन या रेल्वे प्लेटफॉर्म दोनों शब्दों का उपयोग अलग-अलग जगह पर किया गया है। अन्जान व्यक्ति उलझ जाता है और जानकार समझ जाता है कि एक ही चीज़ है! कई बार जब संपूज्य श्री प्लेटफॉर्म की बात कर रहे हों तो वर्णन की शुरुआत में अलग होता है, बीच में अलग होता है और अंत में दूसरे सिरे का उससे भी अलग होता है। इसलिए देखने में ऐसा लगता है कि विरोधाभास है। वास्तव में एक ही चीज़ की अलग-अलग स्टेजों का वर्णन है!

यहाँ पर दादाश्री की वाणी जो कि अलग-अलग निमित्ताधीन, अलग-अलग क्षेत्र, काल और हर एक के अलग-अलग भावों के अधीन निकली, उसका संकलन हुआ है। प्रकृति की एक से सौ तक की बातें निकली हैं लेकिन निमित्त बदलने की वजह से पाठक को समझने में थोड़ी मुश्किल हो सकती है। कई बार ऐसा लगता है कि प्रश्न पुनः-पुनः पूछे गए हैं लेकिन पूछने वाले व्यक्ति अलग-अलग हैं, जबकि उसे स्पष्ट रूप से समझाने वाले सिर्फ एक परम ज्ञानी दादाश्री ही हैं। और, आप्तवाणी पढ़ने वाला पाठक तो हर बार एक ही व्यक्ति है, जिसे समग्र बोध ग्रहण करना है। जैसे परम पूज्य दादाश्री का एक ही व्यक्ति के साथ वार्तालाप हो रहा हो, वैसी सूक्ष्मता से संकलन का प्रयास हुआ है। हाँ, प्रश्नोत्तरी रूपी वाणी में हर एक बात के स्पष्टीकरण अलग-अलग लगते हैं लेकिन वे अधिक से अधिक गहराई में ले जाते हैं! जो कि गहराई से स्टडी करने वाले को समझ में आ जाएँगे।

इस प्रकार सभी कुछ करने के बाद भी मूल आशय से आशय को समझना तो दुर्लभ-दुर्लभ और दुर्लभ ही लगता है।

परम पूज्य दादाश्री की वाणी के प्रवाह में एक ही चीज़ के लिए अलग-अलग शब्द निकले हैं जैसे कि प्रकृति, *पुद्गल,* अहंकार

वगैरह, वगैरह तो किसी जगह पर एक ही शब्द का उपयोग अलग-अलग चीज़ों के लिए हुआ है जैसे कि 'मै' का उपयोग अहंकार के लिए हुआ है, तो 'मैं' का उपयोग आत्मा के लिए भी हुआ है। (मैं, बावो और मंगलदास में) महात्माओं को इन सब को योग्य रूप से समझना होगा। सैद्धांतिक समझ के विशेष स्पष्टीकरण देने के लिए मेटर में कहीं-कहीं ब्रेकेट में आवश्यक संपादकीय नोट रखा गया है, जिससे पाठक को समझने में सहायता होगी।

प्रस्तुत ग्रंथ के पूर्वार्ध में द्रव्यकर्म के आठों प्रकारों को विस्तार पूर्वक समझाया गया है। शास्त्रों में तो अनेक गुना विस्तार से दिया गया है जो साधक को उलझन में डाल देता है। परम पूज्य दादाश्री ने, आत्मार्थियों को मोक्ष मार्ग में ज़रूरत लायक ही, जो आवश्यक है, उतने को ही विशेष महत्व देकर बहुत ही सरल भाषा में समझाकर क्रियाकारी कर दिया है।

परम पूज्य दादाश्री ने कितनी ही जगह पर आत्मा को ज्ञाता-दृष्टा कहा है। तो कितनी ही जगह पर प्रज्ञा को। यथार्थ रूप से तो जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता तब तक आत्मा के रिप्रेज़नटेटिव के रूप में प्रज्ञा ही ज्ञाता-दृष्टा रहती है और अंत में केवलज्ञान होने के बाद आत्मा स्वयं पूरे ब्रह्मांड के प्रत्येक ज्ञेय का प्रकाशक बनता है!

कितनी ही बातें जैसे कि प्रज्ञा की बात बार-बार आती है, तब वह पुनरुक्ति जैसा लगता है लेकिन वैसा नहीं है। हर बार अधिक सूक्ष्मता से समझाया होता है। जैसे कि शरीर शास्त्र (अनोटोमी) छट्ठी कक्षा में आता है, दसवीं में, बारहवीं में भी आता है और मेडिकल में भी आता है। विषय और उसकी बेसिक बातें सभी में मिलती हैं लेकिन सूक्ष्मता हर एक में अलग-अलग होती है।

जब मूल सिद्धांत अनुभव गोचर होता है तब वाणी या शब्द की भिन्नता कहीं भी बाधक नहीं रहती। सर्कल के सेन्टर में आए हुए व्यक्ति को किसी के साथ कोई मतभेद नहीं रहता और उन्हें तो सभी कुछ जैसा है वैसा दिखाई देता है। इसीलिए वहाँ पर जुदाई रहती ही नहीं।

कई बार संपूज्य दादाश्री की अति-अति गहन बातें पढ़कर महात्मा या मुमुक्षु ज़रा डिप्रेस हो जाते हैं कि ऐसा तो कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता लेकिन वैसा होगा नहीं। दादाश्री तो हमेशा कहते हैं कि, 'मैं जो कुछ भी कहता हूँ वह मात्र आपको समझ लेना है, उसे वर्तन में लाने का प्रयत्न नहीं करने लगना है। उसके लिए तो वापस नया अहंकार खड़ा करना पड़ेगा।' बात को सिर्फ समझते जाओ, वर्तन में अपने आप आएगा। लेकिन अगर समझे ही नहीं होंगे तो आगे कैसे बढ़ोगे? मात्र समझते जाओ और दादा भगवान से शक्तियाँ माँगो और निश्चय करना है कि अक्रम विज्ञान को यथार्थ रूप से संपूर्ण-सर्वांग रूप से समझना ही है! बस इतनी ही जागृति पूर्णता प्राप्त करवाएगी। अभी तो महात्माओं को पाँच आज्ञा और 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' उस अविरत लक्ष्य में रहने के पुरुषार्थ में ही रहना है।

साधक अनादिकाल से एक ही चीज़ के पीछे पड़े हैं कि मुझे शुद्धिकरण करना है, अशुद्धि दूर करनी है। चित्त को शुद्ध करना है! किसे? मुझे, मुझे, मुझे! वहाँ दादाश्री की अनुभव वाणी प्रवाहित होती है, 'जो मैला करता है, वह भी *पुद्गल* है और जो साफ करता है वह भी *पुद्गल* है!' तू तो मात्र इन सब को 'देखने' वाला ही है! इस प्रकार प्रत्येक बात की अविरोधाभासी व सैद्धांतिक प्राप्ति करवा देते हैं।

मूल आत्मा तो केवलज्ञान स्वरूप है, था और रहेगा। यह सारा फँसाव तो संयोगों के दबाव की वजह से है, रोंग बिलीफ से खड़ा हो गया है। एक रोंग बिलीफ उत्पन्न हुई कि 'मैं नीरू बहन हूँ' तो उसमें से अनंत-अनंत रोंग बिलीफें उत्पन्न हो गई हैं! अक्रम विज्ञान से दादाश्री ने मात्र दो घंटों में ही मूल रोंग बिलीफ को खत्म कर दिया और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का निरंतर लक्ष्य और प्रतीति दे दी लेकिन (मैं चंदू भाई हूँ) उस रोंग बिलीफ से उत्पन्न हुई अन्य रोंग बिलिफों को खत्म करते-करते और वापस लौटते-लौटते मूल, वास्तविक केवलज्ञान स्वरूप तक आना है और अंत में 'खुद' खुद बनकर खड़े रहना है। परम पूज्य दादाश्री की वाणी द्वारा जगह-जगह पर इस रोंग बिलीफ को खत्म करने की कला उजागर होती है जो एकावतारी पद प्राप्त करने

के दृढ़ निश्चय को अति-अति सरल और सहज मार्ग बना देती है।

इस प्रकार आप्तवाणी तेरहवीं में पूज्य दादाश्री ने प्रकृति का साइन्स बताकर हद कर दी है और साथ-साथ 'मैं, बावो और मंगलदास' का सब से अंतिम विज्ञान देकर तमाम स्पष्टता कर दी है। जिसे समझने पर अखंड रूप से ज्ञानी की दशा में रहा जा सकता है।

पूज्य दादाश्री ने नीरू बहन और दीपक भाई देसाई को आप्तवाणी की १-१४ श्रेणी प्रकाशित करने की आज्ञा दी थी। उन्होंने कहा था कि आत्मार्थी के लिए आप्तवाणी १४ अर्थात् १ से १४ गुणस्थानक चढ़ने की श्रेणियाँ बन जाएँगी अर्थात् मूल ज्ञान तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और पाँच आज्ञा में आ जाता है लेकिन आप्तवाणियाँ इस मूल ज्ञान को डिटेल में स्पष्ट करती जाती हैं। जैसे कि दिल्ली से किसी ने पूछा, 'नीरू बहन आप कहाँ रहती हैं?' तो हम कहते हैं सीमंधर सिटी में, अडालज। लेकिन अगर उन्हें नीरू बहन तक पहुँचना हो तो उन्हें डिटेल में एड्रेस की ज़रूरत पड़ेगी। अडालज कहाँ पर है? सीमंधर सिटी कहाँ है? अहमदाबाद कलोल हाइवे पर, सरखेज से गांधीनगर जाते हुए अडालज के चौराहे के पास, पेट्रोल पंप के पीछे, त्रिमंदिर संकुल। इस प्रकार विस्तार से बताया जाए तभी वह मूल जगह पर पहुँच पाएगा। उसी प्रकार 'आत्मा' के मूल स्वरूप तक पहुँचने में ये आप्तवाणियाँ दादाश्री की वाणी के महान शास्त्ररूपी ग्रंथ के रूप में डिटेल देती हैं और मूल आत्मा, केवलज्ञान स्वरूपी आत्मा तक पहुँचाती हैं।

- डॉ. नीरूबहन अमीन के

जय सच्चिदानंद

आप्तवाणी-१३ (उत्तरार्ध)

[1]

प्रज्ञा

प्रज्ञा की पहचान यथार्थ स्वरूप से...

प्रश्नकर्ता : यह जो खयाल रहता है कि 'मेरा स्वरूप यह है और यह दूसरा है।' सतत वह जो खयाल रहता है, वह कौन से भागों में है? वह कौन सा भाग है?

दादाश्री : वह तो प्रज्ञा दिखाती है। प्रज्ञा सभी कुछ दिखाती है। ये सबकुछ अलग-अलग दिखाती है।

प्रश्नकर्ता : उसका भी खयाल रहता है कि इन दोनों को जो भिन्न दिखा रही है, वह भी मैं नहीं हूँ। मैं यह हूँ।

दादाश्री : वह तो ठीक है, प्रज्ञा दिखाती है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा कैसे उत्पन्न होती है और कहाँ से उत्पन्न हुई?

दादाश्री : वह तो, जब 'हम' ज्ञान देते हैं तभी उत्पन्न हो जाती है। ज्ञान से प्रज्ञा उत्पन्न हो गई। प्रज्ञा का काम शुरू हो गया।

दो शक्तियाँ हैं अंदर! जब हम ज्ञान देते हैं तब प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न हो जाती है। वर्ना अज्ञाशक्ति तो जीवमात्र में होती ही है यानी कि जब 'मैं' और 'मूर्ति' दोनों एक हो जाएँ, तब उसे अज्ञाशक्ति कहते हैं। संसार खड़ा करने वाली अज्ञाशक्ति है। वह संसार के बाहर निकलने नहीं देती। प्रज्ञाशक्ति उसे संसार में रहने नही देती। मार-

ठोककर, खींचकर, यों बाँधकर मोक्ष में ले जाती है। अत: यह जो शक्ति उत्पन्न हुई है, वह काम करती रहती है। उसमें 'हमें' दखल नहीं करनी है बीच में। अपने आप काम हो ही रहा है, सहज रूप से काम हो रहा है।

ज्ञानीपुरुष जब इगोइज़म निकाल देते हैं, उसके बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इगोइज़म और ममता, वे अज्ञाशक्ति की देख-भाल में हैं। जब प्रज्ञा उत्पन्न होती है तब अज्ञा नाम की शक्ति अपना सबकुछ समेटकर, झाड़-बुहारकर जाने लगती है! जैसे कांग्रेस गवर्मेन्ट के आने पर सभी अंग्रेज चले गए थे न!

भगवान ने क्या कहा है कि बंध (बंधन) किसकी वजह से है? अज्ञा की वजह से बंध है। यह संसारबंध अज्ञा से हो रहा है। अज्ञा से पाप-पुण्य की रचना होती है। अज्ञा, और उसका प्रतिपक्षी शब्द है मुक्ति, वह प्रज्ञा से होती है। वह प्रज्ञा निरंतर 'आपको' सावधान करती है। पहले वह नहीं थी। पहले अज्ञा थी। यह जो अज्ञा है वह खुद उल्टा ही उल्टा लपेटती रहती है। अज्ञा से यह संसार खड़ा हो गया, प्रज्ञा से संसार का नाश हो जाता है। अज्ञा से अहंकार है। निर्‌अहंकारी होने के बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसका लक्ष्य बैठने के बाद प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होती है।

अब अज्ञा में क्या होता है कि 'यह मैंने किया, मैंने दु:ख भोगा, उसने किया, उसने गालियाँ दीं मुझे।' प्रज्ञा क्या कहती है कि 'मैं कर्ता नहीं हूँ, मैं भोक्ता नहीं हूँ, मैं ज्ञाता हूँ।' सामने वाले ने मुझे गालियाँ दीं तो वह निमित्त है बेचारा, वह भी कर्ता नहीं है। वह सब से अंतिम प्रकार का ज्ञान है। सामने वाला कर्ता नहीं दिखाई दे और खुद भी कर्ता नहीं है, ऐसा भान रहा तो वह मोक्ष का सब से अंतिम साधन है।

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष को राग-द्वेष जानना, उसे प्रज्ञा का उपयोग कहा जाएगा? प्रज्ञा उस समय उपयोग में रहती है?

दादाश्री : प्रज्ञा का बेसमेन्ट तो अलग ही है। इतना तो अज्ञानी

भी समझता है कि यह राग-द्वेष कर रहा है। 'राग-द्वेष चले गए हैं', उसे प्रज्ञा जानती है। वह अज्ञानी को समझ में नहीं आता। बाकी, छोटा बच्चा भी राग-द्वेष को समझता है न! हम मुँह चढ़ाएँ तो बच्चा चला जाता है, वापस नहीं आता।

अज्ञा के जाने पर प्रज्ञा उत्पन्न होती है। जगत् के जीवमात्र में जब तक मिथ्यात्व है, तब तक अज्ञा है और मिथ्यात्व चला जाए, तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : क्या संसार में रहकर प्रज्ञा प्रकट नहीं हो सकती? अज्ञा ही रहती है?

दादाश्री : नहीं। महात्माओं में प्रज्ञा उत्पन्न हो गई है। अब आप संसार में हो तो भी प्रज्ञा उत्पन्न हो गई है न! अत: अब संसार में जहाँ-जहाँ आपको बंधन है, हमेशा आपको वहाँ से छुड़वा देगी, सचेत करके। हमें अगर कोई जागृति न रहे तो अंदर से चेतावनी मिलती है, वह प्रज्ञाशक्ति का काम है और जब संसार व्यापार करता है तब अज्ञाशक्ति कहती है, 'ऐसा करो तो शादी हो पाएगी, यों मिल जाएगा।' अज्ञाशक्ति वह चेतावनी देती है लेकिन उससे तो संसार में भटकना होगा जबकि प्रज्ञा मोक्ष के लिए सचेत करती है।

प्रश्नकर्ता : सभी डिसिज़न बुद्धि लेती है न?

दादाश्री : हाँ, डिसिज़न बुद्धि लेती है लेकिन दो प्रकार के डिसिज़न। मोक्ष मार्ग के डिसिज़न प्रज्ञा लेती है और सांसारिक डिसिज़न अज्ञा लेती है। अज्ञा अर्थात् बुद्धि। अज्ञा-प्रज्ञा के डिसिज़न हैं ये सारे।

अज्ञा का प्राकट्य?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान और प्रज्ञा में फर्क क्या है?

दादाश्री : प्रज्ञा तो ज्ञान से उत्पन्न होने वाली एक शक्ति है।

प्रज्ञा आत्मा की ही डायरेक्ट शक्ति है, डायरेक्ट लाइट है और अज्ञा इनडायरेक्ट लाइट है। टॉप पर पहुँची हुई बुद्धि अज्ञा कहलाती

है या फिर छोटी से छोटी बुद्धि से लेकर भी... वह सारी अज्ञा ही है। इसके बावजूद भी वह आत्मा की शक्ति है। अज्ञाशक्ति आत्मा की शक्ति है और प्रज्ञा, वह भी आत्मा की शक्ति है।

प्रश्नकर्ता : उस शक्ति को आत्मा की शक्ति कैसे मानेंगे?

दादाश्री : विशेष परिणाम की वजह से अज्ञाशक्ति उत्पन्न हो गई है।

प्रश्नकर्ता : दादा! क्या ऐसा नहीं है कि शक्ति एक ही है? यदि बाहर गई तो अज्ञा में परिणामित होती है और खुद में समा जाए तो...

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। वह अज्ञाशक्ति अलग ही है लेकिन वे दोनों ही आत्मा की शक्तियाँ हैं। जबकि *पुद्गल* में ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : तो उसका अर्थ यह है कि ये जो सभी शक्तियाँ हैं, वे सभी आत्मा की ही शक्तियाँ हैं?

दादाश्री : आत्मा की ही शक्तियाँ हैं लेकिन जब तक आत्मा विशेष परिणाम में फँसा हुआ है, तब तक अज्ञाशक्ति से बाहर नहीं निकल सकता न! जब अज्ञाशक्ति में से बाहर निकलता है, खुद को खुद का भान होता है, तब अज्ञाशक्ति हट जाती है। तब निज परिणाम उत्पन्न होता है। उसके बाद प्रज्ञाशक्ति काम करती है। फिर वह संसार में नहीं जाने देती।

अत: दोनों शक्तियाँ आत्मा की ही हैं। बाकी कोई बाहर की, अन्य किसी की शक्ति है ही नहीं इसमें। वह प्रज्ञाशक्ति और अज्ञाशक्ति दोनों मानी हुई चीज़ें हैं, बिलीफ हैं।

प्रश्नकर्ता : अज्ञाशक्ति की शुरुआत क्यों हुई, उसके पीछे क्या हेतु था?

दादाश्री : मूल आत्मा, और उसे इस जड़ का संयोग प्राप्त हुआ। चेतन के साथ जड़ का संयोग हुआ। उस संयोग से विशेष ज्ञान उत्पन्न हुआ। वही है अज्ञाशक्ति।

प्रश्नकर्ता : अज्ञा और प्रज्ञा, इन दोनों में से किसका चलता है?

दादाश्री : दोनों का ही चलता है। हर एक के अपने क्षेत्र में, अपने-अपने क्षेत्र में दोनों का ही चलता है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा और प्रतिष्ठित आत्मा में फर्क है क्या?

दादाश्री : बहुत फर्क है। प्रतिष्ठित आत्मा तो यह जो 'चंदूभाई' है, वह है और प्रज्ञा तो आत्मा का एक विभाग है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा का उद्‌भव स्थान कौन सा?

दादाश्री : उसका कोई स्थान नहीं होता, उसका तो काल (समय) होता है। जिस समय मिथ्यात्व फ्रेक्चर हो जाता है, तब प्रज्ञा हाज़िर हो जाती है। बुद्धि पर आघात लगे, तो हाज़िर हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : कई बार बातचीत में हम ऐसे शब्दों का उपयोग करते हैं न कि प्रज्ञा आत्मा का ही भाग है।

दादाश्री : हाँ, वह तो है ही न!

प्रश्नकर्ता : आत्मा का भाग है?

दादाश्री : आत्मा का भाग, उसका ऐसा अर्थ नहीं निकालना है। आप अपनी भाषा में ले जाते हो सभी बातें।

वह उसका स्वभाव है कि किसी काल का संयोग हुआ कि प्रज्ञा खुद उत्पन्न हो जाती है और फिर मोक्ष में पहुँचाकर लय हो जाती है। यह अज्ञा भी उत्पन्न हुई है और लय हो जाएगी। जब प्रज्ञा उत्पन्न होती है, तब अज्ञा लय हो जाती है। जैसे कि अंधेरे के बाद दिन (उजाला) आता है।

प्रज्ञा जड़ है या चेतन?

प्रश्नकर्ता : तो प्रज्ञा में थोड़ा-बहुत विकल्प का भाग है न?

दादाश्री : विकल्प से कोई लेना-देना नहीं है वहाँ पर। सभी

विकल्प अज्ञा हैं। इसमें विकल्प वगैरह कुछ भी नहीं है, निर्विकल्पी है यह। चेतन है, जड़ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा भी पावर चेतन ही है न?

दादाश्री : नहीं, वह पावर चेतन नहीं है, वह मूल चेतन है लेकिन वह मूल चेतन में से अलग हुई है, वह भी सिर्फ इस कार्य को पूर्ण करने के लिए ही। उसके बाद फिर एक हो जाएगी वापस।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा *पुद्गल* नहीं है? वह आत्मा और *पुद्गल* के बीच का भाग है?

दादाश्री : नहीं, आत्मा और *पुद्गल* के बीच का भाग नहीं है। आत्मा का एक भाग अलग हो जाता है, जब हम ज्ञान देते हैं उस दिन। मोक्ष में ले जाने तक आत्मा इसमें कुछ भी नहीं करता। अत: आत्मा का यह भाग उससे अलग रहकर काम करता रहता है। आत्मा के सभी अधिकार प्रज्ञा के हाथ में हैं। मुख्तारनामे की तरह।

प्रश्नकर्ता : तो फिर भगवान क्या करते हैं? वे तो ज्ञाता-दृष्टा हैं। किसी भी चीज़ में हाथ ही नहीं डालते। वीतराग हैं।

दादाश्री : हाथ डालने को रहता ही नहीं न? प्रज्ञा तो भगवान की रिप्रेज़ेन्टेटिव जैसी है।

नहीं है वह सम्यक् बुद्धि

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या सम्यक् बुद्धि ही प्रज्ञा है?

दादाश्री : नहीं, प्रज्ञा उससे उच्च प्रकार का भाग है। प्रज्ञा तो प्रतिनिधि है आत्मा की। अभी आत्मा संसार में से आपको मोक्ष ले जाने के लिए खुद कुछ भी काम नहीं करता। उसी का भाग है यह प्रज्ञा। यह प्रज्ञा ही आपको निरंतर मोक्ष में ले जाने के लिए सचेत करती रहती है।

वह प्रज्ञा है और वही मूल आत्मा है, लेकिन अभी वह प्रज्ञा मानी जाती है। मूल आत्मा की ऐसी कोई क्रिया नहीं है, जो मोक्ष में ले जाए।

प्रज्ञा अपना काम पूरा करने के बाद वापस जैसी थी वैसे ही आत्मा में स्थिर हो जाती है। अब, हर एक जीव में प्रज्ञा नहीं हो सकती। वह तो, जब ज्ञानीपुरुष आपका खुद का स्वरूप जागृत कर देते हैं, तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है। जीवमात्र में प्रज्ञा नहीं होती पर अज्ञा तो होती ही है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा का काम यही है न कि वह अज्ञा को घुसने न दे?

दादाश्री : अज्ञा को घुसने देने की तो बात ही नहीं है। अज्ञा को तो वहाँ पर घुसने ही नहीं देती लेकिन इसके साथ ही मोक्ष में ले जाने का काम है उसका। अज्ञान उत्पन्न हो जाए तो उसे दबाकर, उसे समझाकर मोक्ष की तरफ ले जाती है। जबकि अज्ञा का काम क्या है कि थोड़ी-बहुत भी लाइट होने लगे तो वहाँ अंधेरा कर देती है, वह 'उसे' संसार में ले जाती है।

अत: हमें अज्ञाशक्ति की तरफ नहीं रहना है। अज्ञाशक्ति ने तो संसार में भटका मारा है। अज्ञाशक्ति के पास क्रोध-मान-माया-लोभ वगैरह सभी हथियार हैं। अहंकार बहुत विकट होता है। वह पूरा लश्कर है ज़बरदस्त। प्रज्ञाशक्ति में अहंकार नहीं है इसीलिए 'हमें' खुद को हाज़िर रहना चाहिए। हम अगर इस पक्ष में रहेंगे, तो प्रज्ञाशक्ति ऐसी है कि हारेगी नहीं। वह अपना काम करती ही रहेगी। यह सारा उपशम भाव है इसलिए अंदर चंचलता खड़ी हुई कि तुरंत दरवाज़ें बंद कर देने हैं। वर्ना अगर कोई खुद जान-बूझकर उल्टा करे कि 'अब मुझे राग-द्वेष करने हैं,' तो प्रज्ञा वहाँ से हट जाती है।

प्रज्ञाशक्ति को कोई रुकावट न आए, सिर्फ इसलिए ज्ञानीपुरुष का अनुसरण करना है। इससे वह शक्ति मज़बूत होती जाएगी। इस शक्ति को कोई परेशानी नहीं आनी चाहिए। अभी तो बस आई ही हो और अगर कोई परेशानी आ गई तो चली जाएगी।

ज्ञान के बाद अज्ञाशक्ति की स्थिति

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब ज्ञान के बाद अज्ञा और प्रज्ञा दोनों

साथ में रहते हैं। अज्ञा होती है तब प्रज्ञा नहीं होती और जब प्रज्ञा होती है तब अज्ञा नहीं होती?

दादाश्री : नहीं, दोनों साथ में रहती हैं। उनमें खिंचातानी चलती रहती है। आपको यह ज्ञान दिया है, फिर भी देह में दोनों साथ में रहती हैं। अत: यह जो अज्ञा है, उसकी वजह से थोड़ा सफोकेशन होता है, घुटन होती है। धीरे-धीरे अब उस अज्ञाशक्ति का नाश हो जाएगा, और प्रज्ञा बढ़ती जाएगी।

प्रश्नकर्ता : उलझन होती है तब ऐसा लगता है कि अज्ञाशक्ति जाने वाली है।

दादाश्री : जब उलझन होती है उस समय अज्ञाशक्ति है। फिर जब उसका कुछ नहीं चलता है तो वह उलझन में पड़ जाती है और बाद में खत्म हो जाती है। जब तक अज्ञान है तब तक रहेगी और अज्ञाशक्ति जितनी कम होगी, प्रज्ञाशक्ति उतनी ही मुक्त होती जाएगी। अज्ञा शक्ति की वजह से सफोकेशन, घुटन होती है। वह अपना कुछ ले नहीं जाती लेकिन उसकी वजह से घुटन होती है इसलिए जो सुख आ रहा हो, उसे आने नहीं देती। आत्मा के साथ बैठे हैं तो सुख आना चाहिए, वेदन होना चाहिए लेकिन नहीं होने देती। उसे घुटन होने देती है। चिंता नहीं करवाती, उसकी वजह से सिर्फ घुटन होती है।

पहले जो हमें संसार की सभी इच्छाएँ उत्पन्न हुई थीं, उन इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए अज्ञाशक्ति काम कर रही है लेकिन अब अज्ञाशक्ति का ज़ोर बिल्कुल भी नहीं बढ़ेगा। ऐसा नहीं है कि उसमें से अन्य इच्छाएँ उत्पन्न हो जाएँ। अत: ऐसा नहीं है कि बीज में से बीज पड़ें। जो हैं, वही के वही और साथ-साथ प्रज्ञाशक्ति हम से कहती है, 'मुझे *निकाल* कर ही देना है इन सब का। अब पेन्डिंग नहीं रखना है, भाई।' *निकाल* अर्थात् जिसे कहते हैं न, निपटारा कर देना!

पंचाज्ञा का पालन करवाने वाला कौन है?

मेरी अज्ञाशक्ति खत्म हो चुकी है, हम में बुद्धि खत्म हो चुकी है, बुद्धि हम में है ही नहीं। साइन्टिस्ट भी यह नहीं मानते कि हमारी बुद्धि खत्म हो गई है। कोई मानेगा ही नहीं न! बुद्धि कैसे खत्म हो सकती है?

प्रश्नकर्ता : अज्ञा किसी में कम या ज़्यादा हो सकती है?

दादाश्री : अज्ञा तो कम-ज़्यादा हो सकती है सभी में। यह ज्ञान मिलने के बाद प्रज्ञा तो तुरंत ही काम करने लगती है। उसके बाद 'उसका' पुरुषार्थ किस तरफ है, पुरुषार्थ अर्थात् पाँच आज्ञा का पालन करना। पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ नहीं करे तो उसकी खुद की ही भूल है न! ज्ञान मिलने के बाद पुरुष हो गया, ऐसा कहा जाएगा और पुरुष होने के बाद आज्ञा पालन करने से वह पुरुषोत्तम होता जाता है। जो पुरुषोत्तम हो जाए, वही परमात्मा है। रास्ता सुव्यवस्थित वाला हाईवे ही है न!

प्रश्नकर्ता : आज्ञा का पालन कौन करता है, प्रतिष्ठित आत्मा ही पालन करता है न?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा के लिए आज्ञा पालन का प्रश्न ही कहाँ है इसमें? यह तो आपको जो आज्ञा का पालन करना है, वह आपका जो प्रज्ञा स्वभाव है, वही आपसे सबकुछ करवाता है। आत्मा की प्रज्ञा नामक शक्ति है, तो फिर और क्या रहा उसमें? बीच में किसी की दखल है ही नहीं न! आज्ञा का पालन करना है। अज्ञाशक्ति जो नहीं करने दे रही थी, वह प्रज्ञाशक्ति करने देती है। आज्ञा पालन करने से आपको प्रतीति में रहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। और वह *लक्ष* (जागृति) में है लेकिन अनुभव में कम है। उस रूप हुए नहीं हो अभी। उसके लिए, जब पाँच आज्ञा का पालन करोगे तब उस रूप हो पाओगे। अत: अन्य कुछ भी करना बाकी नहीं रहा।

अत: आज्ञा ही धर्म और आज्ञा ही तप। जब तक तप है, तब

तक प्रज्ञा है। तब तक मूल स्वरूप नहीं है। आत्मा में वह तप नामक गुण है ही नहीं, प्रज्ञा तप करवाती है।

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान लेने के बाद महात्माओं को ऐसा *लक्ष* रहता है कि वह खुद शरीर से जुदा है। शुद्धात्मा का *लक्ष* (जागृति) आ गया है और उसके बाद देखने की जो सभी क्रियाएँ चलती रहती हैं, वे सब प्रज्ञा से होती हैं न?

दादाश्री : सारा प्रज्ञाशक्ति का ही काम है।

प्रश्नकर्ता : तो इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान क्रिया से देखना, वह तो बहुत दूर रहा?

दादाश्री : वही, अभी ज्ञान क्रिया प्रज्ञाशक्ति की ही है। जो वास्तविक ज्ञान क्रिया है, वह तो जब इन सभी फाइलों का *निकाल* हो जाएगा तब वह ज्ञान क्रिया हो पाएगी।

प्रश्नकर्ता : आप्तवाणी में पढ़ा है कि जो अशुद्ध है, अशुभ है व शुभ है, उन सभी क्रियाओं को जो जानती है, वह बुद्धि क्रिया है और जो सिर्फ शुद्ध को ही जानती है, वह ज्ञान क्रिया है इसलिए मुझे ऐसा लगा कि हमारी प्रज्ञा सब देखती है।

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञा से। वह जो प्रज्ञा है, वह कुछ हद तक, जब तक फाइलों का *निकाल* करता है तब तक प्रज्ञा रहती है। फाइलें खत्म हो जाने के बाद आत्मा ही खुद जानता है।

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब यह प्रज्ञा मोक्ष के दरवाज़े तक मदद करने के लिए है?

दादाश्री : दरवाज़े तक नहीं, अंत में मोक्ष में बिठा देती है। हाँ, पूर्णाहुति करवाने वाली यह प्रज्ञा ही है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने के बाद प्रज्ञाशक्ति वापस आती है?

दादाश्री : नहीं, वह शक्ति मोक्ष में पहुँचाने तक ही रहती है (यानी 'केवलज्ञान होने तक ही' समझना है)!

जुदा ही रखे, वह प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : हम एकाकार न हों, उसका खयाल तो प्रज्ञा रखती है न?

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञा अलग ही रखती है, एकाकार न हो जाए उसी का ही ज्ञान दिया है आपको। प्रज्ञा आपको सचेत करती है। जब भूल हो जाए उस समय आपको सचेत करती है, बस।

प्रश्नकर्ता : सचेत होना है, ऐसा किस तरह से कहती है?

दादाश्री : जागृत रहना है। एकाकार न हो जाए 'उसके' साथ।

प्रश्नकर्ता : हाँ, विशेष भाव के साथ एकाकार न हो जाए। यह क्रिया तो आत्मा की नहीं हुई दादा?

दादाश्री : आत्मा की क्रिया मानी ही नहीं जाती किसी में भी।

प्रश्नकर्ता : सचेत करने की क्रिया आत्मा की है या नहीं?

दादाश्री : सचेत करने की क्रिया तो स्वभाविक क्रिया है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा की नहीं है? आत्मा की या प्रज्ञा की?

दादाश्री : वह तो प्रज्ञा की है। सब एक ही है न! वास्तव में इसमें अन्य कुछ है ही नहीं। हम सचेत रहने को नहीं कहते? उपयोग रखो। उपयोग अर्थात् वहाँ सचेत रहना है।

प्रश्नकर्ता : ये जो तन्मयाकार हो जाते हैं, वह?

दादाश्री : हाँ, वही अज्ञाशक्ति है और जो तन्मयाकार नहीं होने दे, वह प्रज्ञाशक्ति है।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा होने के बाद अपने हाथ में मात्र 'देखना' ही रहा न?

दादाश्री : देखने और समझने की वह सारी शक्ति प्रज्ञा की है। शुद्धात्मा की जो शक्ति उत्पन्न होती है, वह प्रज्ञाशक्ति है और अहंकार की जो शक्ति है, वह अज्ञाशक्ति है। वह बुद्धि के रूप में होती है।

हर कहीं फायदा और नुकसान ही दिखाती है। बस में बैठे तो वहाँ भी फायदा-नुकसान दिखाने लगती है। खाना खाने जाए तो वहाँ भी फायदा-नुकसान दिखाती है।

प्रश्नकर्ता : आप जो समझाते हैं, वह किसे पहुँचता है? देह को या आत्मा को?

दादाश्री : आत्मा को ही न! पर वह कौन सा आत्मा? जो शुद्धात्मा है, वह नहीं, प्रज्ञा नामक जो शक्ति है, उसके साथ सत्संग चलता रहता है। देह को भी नहीं, देह और आत्मा दोनों के बीच की जो शक्ति है, उसे पहुँचता है। प्रज्ञाशक्ति ही समझती है यह। यहाँ जो समझाते हैं, उसे जो कैच करती है, वह प्रज्ञाशक्ति है।

अंदर जो सावधान करता है, वही है आत्मानुभव

पूरे दिन सावधान करती है, वही प्रज्ञा है। अलग ही करती रहती है। इतना सारा अनुभव, पूरे दिन का अनुभव हमें अलग का अलग ही रखता है। नहीं?!

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : एक नहीं होने देती।

प्रश्नकर्ता : जब से प्रज्ञा शुरू हुई है, तभी से आत्मा के अनुभव की शुरुआत हो गई न?

दादाश्री : आत्मा का अनुभव हो ही जाता है। तभी वह सचेत करती है न, वर्ना यह *लक्ष* (जागृति) में ही नहीं रहता कि 'मैं आत्मा हूँ।' यह तो निरंतर *लक्ष* में रहता है और निरंतर जागृति ही रहती है। वह लाइट जलती रहती है, लेकिन अगर आप दूसरी जगह पर चले जाओ तो उसमें वह क्या करे? और आज्ञा पालन करे तो निरंतर लाइट रहती ही है। यों विज्ञान को पूरी तरह से समझ ले तो काम का है! अंदर सचेत करती है आपको? ज़रा सा भी इधर-उधर किया तो सचेत करती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तुरंत ही सावधान करती है अंदर। यह हमारा अनुभव है!

दादाश्री : अब यों जो सचेत करती है, उसमें आपको ऐसा लगता है न कि आप कुछ नहीं करते फिर भी ऐसा चलता रहता है! हर बार भूल होने पर सचेत करती है न! जहाँ-जहाँ दोष होता है वहाँ पर सचेत करती है न! वह क्या है? प्रज्ञा। दोष होते ही तुरंत सचेत करती है। अत: यह जो विज्ञान है, वह चेतन विज्ञान है। जहाँ पर शास्त्रज्ञान होता है, वहाँ पर हमें करना पड़ता है। शास्त्र में लिखी हुई चीज़ हमें करनी पड़ती है और इसमें आपको करना नहीं पड़ता। अपने आप ही होता है न!

प्रश्नकर्ता : अब, यह प्रज्ञा सचेत करती रहती है, वैसा अनुभव तो होता ही है लेकिन उसके साथ ही अपने खुद के पुरुषार्थ की भी ज़रूरत है न?

दादाश्री : कैसा पुरुषार्थ?

प्रश्नकर्ता : इस प्रज्ञा की मदद से पता चलता है कि यह गलत हो गया है तो फिर वहाँ पर प्रतिक्रमण करके उसे साफ कर देना चाहिए न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण का पुरुषार्थ तो रहता ही है। प्रतिक्रमण होते ही हैं। जिससे अतिक्रमण होता है उससे प्रतिक्रमण का पुरुषार्थ होता ही रहता है। पुरुष पुरुषार्थ धर्म का पालन करता ही रहता है।

प्रतिक्रमण हो ही जाता है। सहज स्वभाव से होता रहता है और अगर नहीं होता है तो उसे करना चाहिए। उसमें करने को कुछ भी नहीं है, सिर्फ भाव ही करना है। अजागृति है तो उसके बजाय जागृति में रहना है।

प्रज्ञा से उल्टा कौन चलाता है?

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा सचेत करती है, इसके बावजूद भी उस अनुसार नहीं होता, तो ऐसे उल्टा कौन करवाता है?

दादाश्री : अगर उस अनुसार नहीं होता है तो हमने ही ऐसे अंतराय डाले हुए हैं। तो अपनी इच्छा हो फिर भी वैसा नहीं हो पाता।

प्रश्नकर्ता : ये सब अंतराय डाले हुए हैं, तो उसका उपाय क्या है?

दादाश्री : जो हो गया, वह अंतराय का फल आया है। उस अंतराय को तो भुगतना ही पड़ेगा लेकिन नए नहीं डालने चाहिए।

प्रज्ञा और दिव्यचक्षु

प्रश्नकर्ता : हम सभी को आपके द्वारा प्रदान किए गए दिव्यचक्षु से हम में उद्‌भव होने वाले क्रोध-मान-माया-लोभ व अब्रह्मचर्य के परिणाम दृष्टिगोचर होते रहते हैं। क्या वह दिव्यचक्षु ही प्रज्ञाशक्ति है?

दादाश्री : प्रज्ञाशक्ति से ही यह दिखाई देता है। जबकि दिव्यचक्षु तो एक ही काम करते हैं कि औरों में शुद्धात्मा देखने का। बाकी का यह सब क्रोध-मान-माया-लोभ, अब्रह्मचर्य के परिणाम वगैरह सभी अंदर दिखाई देते हैं, वह सब प्रज्ञाशक्ति का काम है। जब तक संसार के परिणामों का *निकाल* करना बाकी है, तब तक यह प्रज्ञा काम करती है।

दिव्यचक्षु तो बस एक ही काम करते हैं। ये चमड़े के चक्षु रिलेटिव को दिखाते हैं और दिव्यचक्षु रियल को दिखाते हैं। दिव्यचक्षु अन्य कोई भी काम नहीं करते।

अज्ञानी को कौन सचेत करता है?

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है, हमने कुछ खराब काम किया हो न, तो हमें ऐसा लगता है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए।' यह किसे होता है? अहंकार को होता है या वास्तव में आत्मा को होता है?

दादाश्री : 'ऐसा नहीं होना चाहिए,' वह आत्मा को नहीं होता।

वह, अंदर यह जो प्रज्ञाशक्ति है न, उसे होता है यानी कि अभिप्राय बदल गया कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए।' यह अहंकार कहता है, 'होना चाहिए' और यह प्रज्ञा कहती है 'नहीं होना चाहिए।' दोनों के अभिप्राय अलग-अलग हैं। यह पूर्व में चला और यह पश्चिम में चला।

प्रश्नकर्ता : अब, जिसने ज्ञान नहीं लिया है, उसे भी ऐसा लगता है कि, 'ऐसा काम नहीं करना चाहिए मुझे।' तो फिर क्या उसका खुद का भी ईमानदारी का कोई लेवल होता है?

दादाश्री : वह तो, उसने जो ज्ञान जाना है न, वह ज्ञान उसे बताता है, लेकिन वह ज्ञान सफल नहीं होता, क्रियाकारी नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यानी कि मुझे यह जानना था कि ऐसा किस प्रकार से होता है?

दादाश्री : वह ज्ञान उगता नहीं है। वह शुष्कज्ञान है जबकि विज्ञान उगता है। यह विज्ञान है।

पछतावा किसे होता है?

आत्मा को जान लिया, अब इसके बाद और क्या जानना बाकी है? आत्मा को जान लिया कि यह भाग आत्मा है और यह नहीं है। जब समभाव से *निकाल* करता है उस समय, वह आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह समभाव से *निकाल* आत्मा करता है या चंदूभाई करता है?

दादाश्री : वह प्रज्ञाशक्ति है। आत्मा को तो जैसे कुछ करना ही नहीं है। चंदूभाई अगर उग्र हो जाएँ, सख्ती करें तो आपको अच्छा नहीं लगता कि 'ऐसा क्यों?' यह आत्मा है और जो उग्र होता है, वह है चंदूभाई।

प्रश्नकर्ता : गुस्सा होने के बाद जो पछतावा करता है वह गुण जड़ का है या चेतन का है?

दादाश्री : वह गुण तो जड़ का भी नहीं और चेतन का भी नहीं है। वह तो प्रज्ञा का स्वभाव है। इन जड़ और चेतन के गुण ऐसे नहीं होते। ऐसा गुस्सा करने का गुण नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : यह जो पछतावा होता है, वह कौन करवाता है?

दादाश्री : वह सब प्रज्ञा करवाती है।

प्रश्नकर्ता : ये प्रतिक्रमण कौन करवाता है?

दादाश्री : वह सब प्रज्ञा ही करवाती है।

भूलें दिखने लगें तो भगवान बन जाए। भूलें किसकी वजह से दिखाई देने लगती है? वह तो, अपनी प्रज्ञाशक्ति की वजह से। आत्मा में जो प्रज्ञाशक्ति रही हुई है, उसकी वजह से सभी भूलें दिखने लगती हैं और वही हमें भूलें दिखाती है इसीलिए तुरंत हम उनका निबेड़ा ले आते हैं। हम कहते हैं कि 'भाई प्रतिक्रमण करो।'

वह प्रज्ञाशक्ति दाग़ दिखाती है, तब हम कहते हैं कि 'धो दो, इसे धो दो। इन दाग़ों को धो दो।' तो फिर सभी दाग़ों को धो देता है। प्रतिक्रमण किया तो साफ!

प्रश्नकर्ता : अक्रम में यह जो सामायिक करते हैं, उसमें जो पिछले सारे दोष दिखाई देते हैं, तो सामायिक में देखने वाला वह कौन है? आत्मा या प्रज्ञा?

दादाश्री : प्रज्ञा। आत्मा की शक्ति। जब तक आत्मा संसार में काम करता है तब तक वह प्रज्ञा कहलाता है। मूल आत्मा खुद नहीं करता है।

प्रश्नकर्ता : आप कई बार सामयिक में बैठाकर त्रिमंत्र बोलने को कहते हैं न, 'पढ़ो, नमो अरिहंताणं करके', तो क्या उस समय आत्मा ही वह पढ़ता है? और जब हम सत्संग की पुस्तक पढ़ते हैं, आप्तवाणी पढ़ते हैं, वह शुद्ध चित्त पढ़ता है और सामायिक में आत्मा पढ़ता है, वह एक समान ही है?

दादाश्री : मूल आत्मा जो पढ़ता है, वह अलग प्रकार का है। यहाँ पर आत्मा कहने के पीछे हमारा भावार्थ क्या है कि रास्ते पर लाने के लिए कहते हैं। ये इन्द्रियाँ नहीं हैं, ऐसा कहना चाहते हैं लेकिन यह मूल आत्मा तो, खुद की बुद्धि क्या कर रही है, मन क्या कर रहा है, उन सभी को जानता है। वह भी वास्तव में मूल आत्मा नहीं है, अपनी प्रज्ञा है। वह मूल आत्मा की शक्ति कहलाती है इसलिए वह सबकुछ जानती है। 'वह (आत्मा) जानता है' वह सही है लेकिन यह (प्रज्ञा से जाना हुआ) भी गलत नहीं कहा जाएगा। यहाँ पर इन्द्रियाँ नहीं हैं। उसी प्रकार इसमें मूल आत्मा तो बिल्कुल ही नहीं है। ऐसा तो इस रास्ते पर लाने के लिए कहते हैं। अत: इसे रिलेटिव-रियल कहा जाएगा!

विचार और प्रज्ञा बिल्कुल अलग-अलग

प्रश्नकर्ता : अब अगर कोई विचार आए तो वह प्रज्ञाशक्ति को आया या चंदूभाई को आया, ऐसा कैसे डिस्टिंग्विश हो पाएगा?

दादाश्री : नहीं, कोई भी विचार प्रज्ञाशक्ति का नहीं होता। विचार तो डिस्चार्ज होकर जाने के लिए आते हैं सारे। विचार डिस्चार्ज हैं। वे प्रतिष्ठित आत्मा के हैं, वे चंदूभाई के हैं। प्रज्ञाशक्ति तो देखती है कि क्या विचार आए! अच्छे आए या खराब आए, उन्हें देखती है। उसमें गहरे नहीं उतरती अत: विचार ज्ञेय बन जाते हैं। वे प्रज्ञाशक्ति के लिए ज्ञेयस्वरूप हैं। ज्ञेय अर्थात् जानना और दृश्य अर्थात् देखना। विचार ज्ञेय और दृश्य हैं, अब हम ज्ञाता और दृष्टा हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि अंदर मन भी रडार की तरह दिखाता है तो अभी मन बता रहा है या प्रज्ञा दिखा रही है, इस भेद को किस तरह समझें?

दादाश्री : अभी की बात जाने दो न! अपना ज्ञान प्राप्त होने के बाद प्रज्ञा ही है। जो सभी विचारों से मुक्त करके मोक्ष की तरफ ले जाती है, उसे कहते हैं प्रज्ञा! और पहले अज्ञा नाम की जो शक्ति

थी जो मन के थ्रू बरतती (कार्य करती) थी, बुद्धि के थ्रू बरतती थी, वह संसार में गहराई तक ले जाती है। अत: अभी जो प्रज्ञा नाम की शक्ति है तो वह इस ओर ले जाती है। मन के जो विचार हैं न, वह प्रज्ञा का काम नहीं है। विचार आते हैं या नहीं आते?

प्रश्नकर्ता : आते हैं। उन्हें तो ज्ञाता-दृष्टा भाव से देखते रहते हैं।

दादाश्री : देखते रहना है बस! जिसने मन को देखा, उसने मन को जीत लिया और उसने जगत् को भी जीत लिया। भगवान महावीर ने इसी प्रकार से जगत् को जीता था। अत: विचार तो मन का काम है। वे तो आएँगे। उन्हें हमें देखते रहना है। विचार प्रज्ञा के नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : उनमें प्रज्ञा की प्रेरणा होती है?

दादाश्री : नहीं! मन तो विचार दिखाता है अत: उसे हम अपनी भाषा में समझ जाते हैं। प्रज्ञा के विचार होते ही नहीं हैं। विचार का मतलब क्या है? विचार अर्थात् विकल्प और निर्विचार अर्थात् निर्विकल्प। यह तो निर्विकल्प दशा है अत: मन में जो विचार आते हैं, उन्हें देखना है, बस! और प्रज्ञा वे दिखाती है।

देखने वाले को थकान कैसी?

प्रश्नकर्ता : इन मन-वचन-काया को देखने वाली प्रज्ञा है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : पूरे दिन मन-वचन-काया को देखते-देखते थक जाते हैं तो यह थकने वाला कौन है?

दादाश्री : वह जो थकता है, अपने मन में जो उल्टा असर हो जाता है तो वे असर ही थक जाते हैं, और कोई भी नहीं थकता। थकता ही नहीं है न! देखने वाला थकता नहीं है। काम करने वाला थक जाता है।

प्रश्नकर्ता : देखने वाली तो प्रज्ञा है न?

दादाश्री : प्रज्ञा ही है। अभी तो प्रज्ञा ही काम कर रही है न! जब तक ये सब दखल हैं तब तक प्रज्ञा काम करेगी उसके बाद जब ये दखल नहीं होंगी तो आत्मा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, थक तो जाते हैं। कई बार ऐसा लगता है कि यह सब कब बंद होगा? तो जब थकान होती है तभी ऐसा लगता है न? सहज हो तो ऐसा नहीं होगा न?

दादाश्री : वह जो थकान महसूस होती है, वह भी सिर्फ ऐसा प्रतीत होता है। थकान तो होती ही नहीं न! देखने वाले को थकान नहीं होती। काम करने वाले को थकान होती है। देखने वाले को तो थकान छूती तक नहीं है। यह पहले का परिचय है न! थक जाने का। उसे ऐसा लगता है कि 'थकान हो गई।'

प्रश्नकर्ता : यह मन ऐसा क्यों करता है? वचन ऐसा क्यों निकला? अंदर ऐसे कुछ अभिप्राय हो जाते होंगे, इसलिए भी थकान होती होगी शायद।

दादाश्री : अभिप्राय! हाँ, ऐसा सब होता है।

अलग हो चुका शुद्ध चित्त, वही है प्रज्ञा

अज्ञा तो अंदर रास्ता दिखाती है फायदे-नुकसान के लिए। द्वंद्व खड़े करती है।

प्रश्नकर्ता : अभी आपने कहा कि द्वंद्व खड़े करती है। अब ये जो शब्द निकले कि 'खड़े करती है', वह भाग कौन सा है?

दादाश्री : वह तो, शब्द बोले जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे शब्द, क्या यह जो स्थूल मन है, वह बोलता है?

दादाश्री : नहीं, बुद्धि में से उत्पन्न होते हैं। खड़े होने का मतलब ऐसा नहीं कि कोई इंसान खड़ा होता है। बुद्धि से उत्पन्न होते हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन आपने यह जो वर्णन किया, वह एक्ज़ेक्ट है न? उत्पन्न होता है, ऐसा आपको दिखाई देता है और आप कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, लेकिन 'दिखाई देता है और कहते हैं', वह भी औरों को तो नहीं दिखाई देता न! अत: उसके लिए ऐसा कहना पड़ता है कि ये खड़े होते हैं या उत्पन्न होते हैं। वह मन नहीं है, मन का काम नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर जो दिखाई देता है, वह कौन सा भाग है?

दादाश्री : वह तो प्रज्ञा का भाग है। वह आत्मा का मूल भाग है। सभी कुछ देखा जा सकता है। आप में प्रज्ञा उत्पन्न हो चुकी है लेकिन अभी जब तक निरालंब न हो जाएँ, तब तक प्रज्ञा फुल काम नहीं करेगी। अभी तो गाँठों में ही घूमता रहता है न?! जब ग्रंथियों का छेदन हो जाएगा तब काम आगे बढ़ेगा। मन दिखा ही नहीं सकता ऐसा सब।

प्रश्नकर्ता : अब वह वर्णन करता है, वर्णन के स्तर तक आता है इसलिए उसे प्रज्ञा कहना पड़ा?

दादाश्री : हाँ, वह खुद ही प्रज्ञा है और वह आत्मा का भाग है। अत: यह चित्त, जो अशुद्ध हो रहा था, जो अलग हो गया है आत्मा में से, वही खुद शुद्ध होकर वहाँ प्रज्ञा की तरह काम कर रहा है। तभी देखकर बोला जा सकता है न, नहीं तो देखकर बोला नहीं जा सकता न! और जब देखकर कहते हैं तब जोखिमदारी नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : जो देखकर बोलने वाले लोग हैं न, उन्हें अगर ढँकना हो, छुपाना हो, टेढ़ा-मेढ़ा बोलना हो, तब भी नहीं बोल सकते!

दादाश्री : नहीं बोला जा सकता। कैसे बोल पाएँगे? जैसा है वैसा कह देना पड़ेगा वर्ना फिर भी बाहर टेढ़ा असर होगा न! देखकर बोलूँ और उससे कुछ अलग करने जाऊँ तो फिर बाहर वाले तो समझ जाएँगे कि कुछ अलग आया। यह नहीं है। भले ही बाहर वाले को

बोलना न आए, लेकिन ऐसा समझते तो हैं न कि इतना देखकर बोले हैं और इतना बिना देखे।

फर्क आसमान-ज़मीन का

प्रश्नकर्ता : दादा, सामान्य बुद्धि और प्रज्ञा में क्या फर्क है?

दादाश्री : सामान्य बुद्धि का मतलब है कॉमनसेन्स। वह हमेशा ही संसार की उलझनें सुलझा देती है। संसार के सभी ताले खोल देती है, लेकिन मोक्ष का एक भी ताला नहीं खोल सकती। आत्मज्ञान मिले बिना प्रज्ञा उत्पन्न नहीं हो सकती या फिर अगर समकित हो जाए तब प्रज्ञा की शुरुआत होती है। उस समकित में प्रज्ञा की कैसी शुरुआत होती है? बीज के चंद्रमा जैसी शुरुआत होती है और यहाँ पर तो पूरी प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है। उसके बाद मोक्ष में ले जाने के लिए वह प्रज्ञा सचेत करती है। बार-बार सचेत कौन करता है? वह प्रज्ञा है। जबकि इन्हें क्या था? भरत राजा को सचेत करने वाले नौकर रखने पड़े थे। हर पंद्रह मिनट पर कहते थे कि 'भरत चेत, चेत', चार बार बोलते थे। देखो, आपको तो कोई सचेत करने वाला भी नहीं है, तब फिर अंदर से प्रज्ञा सचेत करती है।

इस देह में टकराव करती रहती है, हमारे अंदर की वह अज्ञाशक्ति तो कब से ही हम से पेन्शन लेकर बैठ गई है। शोर नहीं और शराबा नहीं। उस तरफ का शोर ही नहीं है न, वह पकड़ ही नहीं है न! उस अज्ञाशक्ति ने ही संसार में भटकाया है।

हम तो अबुध होकर बैठे हैं। कोई कहेगा, 'आप में बहुत बुद्धि है?' 'मैंने कहा, 'नहीं भाई! अबुध।' तब कहते हैं, 'अबुध कह रहे हैं?' मैंने कहा, 'भाई, हाँ। वास्तव में अबुध हैं।' अगर बुद्धि होती, तभी फायदा-नुकसान दिखाती न!

हम तो अबुध हैं! बिल्कुल भी झंझट ही नहीं न! फायदे को नुकसान कहा न, नुकसान को फायदा कहा हमने, और फिर व्यवस्थित ऐसा है कि बुद्धि वाले के लिए भी नहीं बदलता और अबुध के लिए

भी नहीं बदलता। वर्ना अगर हम 'व्यवस्थित है', ऐसा नहीं जानते तो हम भी बुद्धि को नहीं छोड़ते। अगर हमने व्यवस्थित को नहीं जाना होता न, तो हम अबुध नहीं हो सकते थे लेकिन हम जानते हैं कि व्यवस्थित है, तो फिर क्या परेशानी या झंझट है? अत: आपसे भी कहा, 'व्यवस्थित है।' अत: यदि बुद्धि का उपयोग नहीं करोगे तो अबुध हो जाओगे, तो चलेगा। मुझ में बुद्धि चली गई, उसके बाद मुझे यह सब समझ में आया था कि यह क्या घोटाला चल रहा है।

बुद्धि का सुनने में सावधान

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का दखल होता है, तब हमें पता चलता है कि बुद्धि ने यह दखल किया वह कौन बताता है? शुद्धात्मा बताता है या प्रज्ञाशक्ति बताती है?

दादाश्री : शुद्धात्मा तो काम करता ही नहीं। प्रज्ञाशक्ति ही बताती है। शुद्धात्मा के बजाय उसके प्रतिनिधि के रूप में प्रज्ञाशक्ति ही काम करती है और वह सब बताती है और वह तो बल्कि अगर आप उस तरफ जा रहे हों न, तो वापस खींचकर यों फिर आत्मा की तरफ ले आती है। बुद्धि को अज्ञा कहा जाता है। उस अज्ञा का काम क्या है कि 'ये मोक्ष में न चले जाएँ', इसलिए वह इसी तरफ खींचती रहती है। प्रज्ञा और अज्ञा, यह झंझट इन दोनों की है और अगर हम एकाकार हो गए तो फिर हो जाता है अज्ञा का काम, फिर वह खुश हो जाती है। तब फिर प्रज्ञा थक जाती है। अगर मूल मालिक ही उसमें एकाकार हो जाए तो फिर क्या हो सकता है!

प्रश्नकर्ता : दादा, यह बुद्धि कब तक दखल करेगी इस तरह से?

दादाश्री : जब तक उसे कीमती माना है तब तक। पड़ोस में एक पागल इंसान रहता हो। पाँच गालियाँ देकर चला भी जाता है रोज़, तो जब वह गालियाँ देने आता है तब हम समझ जाते हैं कि यह पागल आया। हम चाय पीते रहते हैं और वह गालियाँ देता रहता है। इसी प्रकार से भले ही बुद्धि आए और जाए, हमें अपने में रहना

है। बाकी का सब जो है वह *पूरण-गलन* है। आप नहीं कहोगे तब भी अलग रहेगा और अगर आप कहोगे तो भी आए बगैर रहेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : क्या आप ऐसा कहना चाहते हैं कि जब यह बुद्धि दखल कर रही हो, तब हमें उसकी नहीं सुननी चाहिए?

दादाश्री : नहीं सुनो तो बहुत अच्छा लेकिन सुने बगैर रहोगे ही नहीं न आप। अगर कहें कि आप मत सुनना तो भी आप सुने बगैर रहोगे नहीं न! मोक्ष में जाना हो तो बुद्धि की ज़रूरत नहीं है संसार में भटकना हो तो बुद्धि की ज़रूरत है। जिसने ऐसा सब नहीं पढ़ा हो और ब्लेन्क पेपर हो न तो उसे तो बस 'यह चंदू भाई और यह मैं' हो गया बहुत अच्छा। अत: यह सारा डिस्चार्ज है।

प्रश्नकर्ता : दादा, हमें पता चलता है कि यह बुद्धि दखल कर रही है, अगर फिर भी हम बुद्धि का सुनें तो उसे क्या कहेंगे?

दादाश्री : वह तो इसलिए कि अभी तक बुद्धि का सुनने में इन्टरेस्ट है लेकिन फिर भी यह जो प्रज्ञाशक्ति है, वह उसे उसी तरफ खींचती है।

प्रश्नकर्ता : हमें पता चलता है कि बुद्धि दखल कर रही है, फिर भी हम बुद्धि का सुनते रहते हैं। उसे टेढ़ापन कहा जाएगा न?

दादाश्री : यदि सुनते रहें लेकिन उस पर अमल न करें तो हर्ज नहीं है। बाकी देखते ही रहना चाहिए कि बुद्धि क्या कर रही है! अपने स्वभाव में रहे तो झंझट नहीं है। आप में बुद्धि ज़्यादा है लेकिन दादा की कृपा प्राप्त हो चुकी है इसलिए परेशानी नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरी बुद्धि बहुत चलती है लेकिन फिर उसे ज़रा शांत कर देता हूँ। अब उसका नहीं सुनता हूँ।

दादाश्री : उसे छूने ही मत दो। हमारी बुद्धि चली गई है तभी यह झंझट गई न! स्वतंत्र! कोई कुछ भी दखल ही नहीं करता न फिर!

प्रज्ञा स्वतंत्र है बुद्धि से!

अब प्रज्ञा जो है वह मूल आत्मा का गुण है और इन दोनों (तत्वों) का संपूर्ण डिविज़न हो जाने के बाद, पूरी तरह से मुक्त हो गए-अलग हो गए, उसके बाद फिर वह आत्मा में फिट हो जाती है। तब तक मोक्ष में ले जाने के लिए वह अलग हुई है आत्मा से।

प्रश्नकर्ता : क्या टोटल सेपरेशन हो जाने के बाद प्रज्ञा का उदय होता है और यह जो लौकिक बुद्धि है, वह चली जाती है?

दादाश्री : अलग हो जाने के बाद बुद्धि खत्म हो जाती है। प्रज्ञा का अनुभव तो पहले से ही शुरू हो जाता है, संपूर्ण अलग (जुदापन) नहीं हुआ हो तब भी। प्रतीति बैठने का अर्थ यही है कि एक तरफ प्रज्ञा शुरू हो गई। बुद्धि, बुद्धि की जगह पर रहती है और प्रज्ञा प्रकट हो जाती है।

प्रज्ञा की सिर्फ ज्ञानक्रियाएँ

प्रश्नकर्ता : इसके बाद प्रज्ञा की जो दशा आती है, उसे ज्ञान कहा जाता है?

दादाश्री : नहीं! प्रज्ञा ज्ञान का ही स्वरूप है, उसी का भाग है लेकिन जब तक यह शरीर है तब तक उसे प्रज्ञा कहा जाता है और सभी कार्य भी वही करती है। और जब शरीर नहीं रहता तब उसी को आत्मा कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि आत्मा कुछ भी नहीं करता इसलिए उसके एजेन्ट के रूप में प्रज्ञा ही सबकुछ करती है?

दादाश्री : हं, वह कर्ता के तौर पर नहीं, सिर्फ ज्ञानक्रियाएँ करती है।

बुद्धि से बड़ी है प्रज्ञा, उससे भी बड़ा है विज्ञान

प्रश्नकर्ता : अज्ञाशक्ति अर्थात् बुद्धि?

दादाश्री : हाँ, वह बुद्धि ही है लेकिन वह शक्ति बुद्धि-अहंकार वगैरह सब मिलकर बनती है। सिर्फ बुद्धि हो तब तो उसे हम बुद्धि कहेंगे, अब प्रज्ञा का अर्थ है ज्ञान। आत्मा वगैरह सब मिलकर प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रज्ञा बुद्धि से भी बड़ी चीज़ है?

दादाश्री : हाँ, वह बुद्धि से बड़ी है लेकिन विज्ञान प्रज्ञा से भी बहुत बड़ा है लेकिन आप जिसे विज्ञान मानते हो न, वह बौद्धिक विज्ञान है। अर्थात् अभी जो चल रहा है, उस विज्ञान की बात कर रहे हो? उस विज्ञान का अर्थ आपने अपनी भाषा में समझा है। जिसे लोक भाषा में विज्ञान कहते हैं, आप उसी को विज्ञान कह रहे हो? वह तो भौतिक विज्ञान है और हम आध्यात्मिक विज्ञान की बात कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : सामान्य तौर पर लोग उसी विज्ञान को विज्ञान कहते हैं।

दादाश्री : लेकिन मैं उस विज्ञान को विज्ञान नहीं कहता। मैं विज्ञान उसे कहता हूँ कि जो प्रज्ञा से भी बहुत बड़ी स्टेज है। जहाँ पर बुद्धि की ज़रूरत ही नहीं है। जब बुद्धि खत्म होने की शुरुआत होती है, तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

अध्यात्म में बुद्धि का सहारा

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का सहारा कब तक है? अध्यात्म में वह हमारे लिए कब तक उपयोगी रहती है?

दादाश्री : बुद्धि अध्यात्म में कुछ हद तक ही ले जा सकती है लेकिन मोक्ष की तरफ नहीं जाने देती।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन अध्यात्म की किस स्टेज तक ले जा सकती है?

दादाश्री : कुछ हद तक का समझने की स्टेज तक ही। 'समझने'

के अलावा, मोक्ष की ओर आकर्षण होने लगे, उस तरफ नहीं ले जाती। तुरंत इस तरफ खींचती है, वापस संसार की तरफ खींचती है। यदि 'उसे' मोक्ष की तरफ आकर्षण होने लगे तो बुद्धि तुरंत ही संसार की तरफ खींचती है। अत: बुद्धि तो हमें सिर्फ अध्यात्म को समझने में काम आती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मोक्ष में जाने के लिए काम नहीं आती।

दादाश्री : चलेगी ही नहीं न! काम ही नहीं आती न बुद्धि। बुद्धि तो बल्कि उसे भटका देती है। बल्कि उल्टा-सीधा सिखाती है।

प्रश्नकर्ता : कोई भी व्यक्ति जब दादा के पास आता है तो दादा का जो ज्ञान है, वह पहले उसे बुद्धि से ही समझना है न? दादा का 'ज्ञान' लेने के बाद क्या बुद्धि की बातें पर (पराई) हो जाती है?

दादाश्री : फिर बुद्धि का वर्चस्व ही बंद हो जाता है। फिर प्रज्ञा का वर्चस्व हो जाता है। प्रज्ञा का स्वभाव है कि वह निरंतर मोक्ष में ले जाने के लिए ही सचेत करती रहती है।

जो यहाँ पर अध्यात्म को समझने के लिए आता है, वह तो बुद्धि से नहीं समझता। मेरे पास कोई व्यक्ति बुद्धि से समझ ही नहीं सकता क्योंकि मैं जो वाणी बोलता हूँ न, वह वाणी आवरणों को तोड़कर आत्मा को टच होती है और उसे खुद को समझ में आता है। बाकी, मैं जो कहता हूँ, बुद्धि उसका विश्लेषण कर ही नहीं सकती बल्कि बुद्धि थक जाती है, हमें परेशान कर देती है। उस बुद्धि का इसमें उपयोग ही नहीं करना है। उसकी ज़रूरत ही नहीं रहती।

मैं ये जो बोल रहा हूँ, ये आवरण भेदी शब्द हैं इसलिए आवरण को भेदकर उसके आत्मा तक पहुँचते हैं और मैं क्या कहता हूँ कि अगर आपका आत्मा कबूल करे तभी एक्सेप्ट करना। और आपका आत्मा कबूल करता है। इसलिए अब इसमें बुद्धि दूर ही रहती है।

प्रश्नकर्ता : तो दादा का ज्ञान लेने के बाद महात्माओं को जो बार-बार दादा के पास आने का मन होता है, तो वह प्रज्ञा से है या बुद्धि से?

दादाश्री : बुद्धि और प्रज्ञा दोनों का ही काम नहीं है। प्रज्ञा और बुद्धि का काम अलग है। कुछ भाग प्रज्ञा का है। बाकी यह जो आपको यहाँ पर लेकर आता है, वह सारा काम पुण्य का है!

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह ठीक है लेकिन वह भी तभी होगा न जब प्रज्ञा काम कर रही होगी?

दादाश्री : यानी कि यदि प्रज्ञा काम कर रही होती तो सभी महात्मा आ जाने चाहिए न? लेकिन सभी नहीं आ सकते। कहते हैं न, 'अभी मेरे पुण्य कुछ कम है', यदि प्रज्ञा ही उसके लिए ज़िम्मेदार होती, तब तो सभी आ जाने चाहिए न?

संसार चलाती है बुद्धि

प्रश्नकर्ता : संसार चलाने के लिए हम जितनी बुद्धि का उपयोग करते हैं, वह सब अज्ञा ही कहलाती है न?

दादाश्री : वह सब अज्ञा कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह जो अज्ञा और प्रज्ञा के बीच खींचातानी चलती है, उसमें जो पुण्यशाली होता है, उसी की प्रज्ञा जीत जाती है न?

दादाश्री : नहीं। उसमें तो अब प्रज्ञा ही जीत जाती है क्योंकि दादा द्वारा दिया हुआ ज्ञान बुद्धि के पैर तोड़ देता है। अर्थात् बुद्धि को अपंग बना देता है। और प्रज्ञा तो मज़बूत है, बार-बार सावधान करती है। वह बात पक्की है न?

और लोग मुझ से पूछते हैं, 'दादा, क्या मुझे आत्मा का अनुभव होगा? तो कहा, 'वह तो रोज़ हो ही रहा है न और वापस दूसरा कौन सा करना है?' जब लाठी मारेंगे तब होगा। नहीं? पीछे से लाठी मारते हैं न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन अज्ञा टूटे हुए पैरों से भी बहुत ज़ोर लगाती रहती है।

दादाश्री : हाँ, अपंगों का काम ही ऐसा है। ज़्यादा उछलते हैं।

हमें कहना है, 'अपंग हो गई है, बैठ जा चुपचाप। बहुत दिनों तक तूने उपकार किया है हम पर, अब बैठ। बहुत हो गया।'

प्रश्नकर्ता : दादा, ये जो *निकाली* बातें, विचार वगैरह आते हैं तब सफोकेशन होता है, दम घुटता है। क्या उस समय अज्ञा का ज़ोर रहता है?

दादाश्री : अज्ञा का ज़ोर रहता है न!

प्रश्नकर्ता : उसी कारण सफोकेशन होता है?

दादाश्री : नहीं। ऐसा नहीं है कि सिर्फ अज्ञा से ही होता है। अगर अंदर मन भी वैसा ही हो चुका हो न, तब भी ज़ोर लगाती है। ज़्यादातर तो बुद्धि ही ज़ोर लगवाती है।

प्रश्नकर्ता : जिज्ञासा प्रज्ञा का भाग कहलाती है या बुद्धि का?

दादाश्री : बुद्धि का। प्रज्ञा तो होती ही नहीं है न! यदि प्रज्ञा उत्पन्न हो जाए तो ज्ञानी कहा जाएगा। लेकिन जिज्ञासु की बुद्धि कैसी होती है? समझदारी वाली, गढ़ी हुई बुद्धि, सम्यक् बुद्धि होती है।

क्या सम्यक् बुद्धि और प्रज्ञा एक ही हैं?

जितने समय तक मेरे साथ बैठे, बुद्धि उतनी ही सम्यक् होती जाएगी लेकिन प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होगी। प्रज्ञा तो ज्ञान के बिना उत्पन्न हो ही नहीं सकती। जिसे स्थितप्रज्ञ दशा कहते हैं न, वह तो जब क्रमिक मार्ग में कभी ज्ञान की उच्च दशा तक पहुँचने पर प्रकाश दिखाई देता है, वह है। जबकि यहाँ पर तो हमारे ज्ञान देते ही प्रज्ञा शुरू हो जाती है। यहाँ मेरे पास आकर बैठे न, तो जिसने ज्ञान नहीं लिया हो तो भी उसकी बुद्धि सम्यक् हो जाती है।

प्रज्ञा डायरेक्ट प्रकाश है और सम्यक् बुद्धि इनडायरेक्ट प्रकाश है अर्थात् प्रज्ञा डायरेक्ट आत्मा का ही भाग है। जबकि सम्यक् बुद्धि वैसी नहीं है। फिर भी उसका भी निबेड़ा तो लाना ही पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सम्यक् बुद्धि तो उपकारी है न?

दादाश्री : जब तक इस स्टेशन तक नहीं पहुँचे हैं, तब तक उपकारी है। इस स्टेशन पर पहुँचने के बाद, इससे आगे जाने के लिए वह उपकारी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ज्ञान लेने के बाद सम्यक् बुद्धि नहीं रहती या फिर रहती है?

दादाश्री : ज्ञान लेने के बाद तो प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है। उसके बाद समभाव से *निकाल* करने में प्रज्ञा हेल्प करती है। अत: सम्यक् बुद्धि और प्रज्ञा में बहुत अंतर है! सम्यक् बुद्धि तो बुद्धि कहलाती है और प्रज्ञा तो एक प्रकार से परमानेन्ट चीज़ का भाग है।

प्रश्नकर्ता : क्या सम्यक् बुद्धि पौद्गलिक कहलाती है? वह भी एक भाग तो है ही न?

दादाश्री : वह *पुद्गल* में नहीं आता क्योंकि *पुद्गल* में प्रकाश नहीं होता। यह भले ही कम है लेकिन प्रकाश तो है न! लेकिन न तो यह चेतन में आता है, न ही *पुद्गल* में।

हालाँकि शास्त्रों में इसे चेतन लिखा गया है लेकिन उसमें चेतन नहीं होता। यदि इसे चेतन कहोगे तो वास्तविक चेतन नहीं मिल पाएगा। अब वह सापेक्षभाव से लिखा गया है। लोगों को सापेक्षभाव समझ में नहीं आता। लोगों में समझने की इतनी शक्ति नहीं होती है। मैं समझ जाता हूँ कि यह सापेक्षभाव से लिखा हुआ है।

सम्यक् बुद्धि में मालिकी भाव

प्रश्नकर्ता : सम्यक् बुद्धि और प्रज्ञा में मूल अंतर क्या है?

दादाश्री : बुद्धि अर्थात् बुद्धि। जब तक बुद्धि है, तब तक उसका मालिक है। बुद्धि मालिकीपने वाली होती है। प्रज्ञा का कोई मालिक नहीं है। बुद्धि तो अगर विपरीत हो, तब भी वह मालिकी वाली होती है। सम्यक् बुद्धि हो तो वह भी मालिकी वाली।

प्रश्नकर्ता : सम्यक् बुद्धि हो, लेकिन यदि मालिकी वाली हो

तो नुकसान पहुँचाती है या सबकुछ सही ही बताती है?

दादाश्री : अवश्य, नुकसान ही करती है न! बुद्धि तो न जाने कब पलट जाए, उसके बारे में क्या कहा जा सकता है? जो सम्यक्ता की भजना करता है, वह कब विपरीतता को भजने लगे, वह कहा नहीं जा सकता। और सम्यक् बुद्धि का मतलब क्या है? सम्यक् बुद्धि संसार में नहीं है। सम्यक् बुद्धि पुस्तक पढ़ने से उत्पन्न नहीं हो सकती। सम्यक् बुद्धि तो, जब वह ज्ञानीपुरुष की बातें सुने, तब उसकी बुद्धि सम्यक् होती है। हाँ, फिर वह बुद्धि अटैकिंग स्वभाव या ऐसा कुछ उल्टा-सुल्टा नहीं करती। जो अटैक न करे, हमला न करे, वह कहलाती है सम्यक् बुद्धि। चाहे कैसे भी संयोग हों लेकिन हमला न करे, वह कहलाती है सम्यक् बुद्धि और जो प्रत्येक संयोग में हमला करे, वह कहलाती है विपरीत बुद्धि।

जिस तरह से हार्ट का अटैक आता है न, उसी तरह उसे भी अटैक आता है। बुद्धि को अटैक नहीं आता? चंदू भाई साहब (फाइल नं-1) थे विकट, नहीं देखा आपने?

प्रश्नकर्ता : देखा है। अटैक तो आते थे लेकिन वह अटैक दिखाई नहीं देते थे। आपके पास आकर जब एक्स-रे निकाला तब पता चला कि अंदर का ऐसा सब है।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। तभी पता चलेगा न! जब तक देखा नहीं है, तब तक इन दूसरी चीज़ों को, वह तो ऐसा ही जानता है कि यही अपना है और यही मालिकी। उसमें और क्या अंतर है? हर्ज क्या है? सभी के यहाँ है, वैसा ही अपने यहाँ है। उसमें फिर विभाग बनाता है कि यह अच्छा है और यह खराब। यहाँ पर तो अच्छा-बुरा है ही नहीं न! यहाँ पर तो सनातन की तरफ ले जाने वाली चीज़ें हैं। यह मिथ्या है न, उसमें से सनातन की तरफ ले जाने वाली चीज़ है। बातचीत, व्यवहार वगैरह सब सनातन की और ले जाने वाली चीज़ें हैं। आप जब उसे देखते हो तब आपको ऐसा लगता है कि यह अलग है। यह, वह वाला नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सम्यक् बुद्धि गलतियाँ नहीं करवाती?

दादाश्री : अटैक नहीं करवाती।

प्रश्नकर्ता : और जागृति गलतियाँ दिखाती है?

दादाश्री : जागृति तो सभी कुछ दिखाती है। अंदर कोई भी आया-गया हो तो उसे दिखाती है। जागृति तो केवलज्ञान का भाग है और जब तक जागृति उत्पन्न नहीं होती, तब तक जगत् खुली आँखों से निद्रा में है।

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार प्रज्ञा सचेत करती है, उसी प्रकार सम्यक् बुद्धि क्या हेल्प करती है?

दादाश्री : वह भी वैसा ही काम करती है लेकिन वह तो खुद ही विनाशी है न! इसलिए कोई बहुत बड़ी चेतावनी नहीं दे सकती।

प्रश्नकर्ता : बस इतना ही है कि हिताहित का भान रखती है।

दादाश्री : यह तो वही बुद्धि है, यह सांसारिक बुद्धि होती है न, वैसी ही। वह भी, जब ज्ञानीपुरुष के पास बैठे रहें तब फिर वह बुद्धि सम्यक् होती जाती है। सम्यक् होती जाती है बुद्धि! बाकी, सम्यक् तो सिर्फ ज्ञान ही है, लेकिन यह बुद्धि सम्यक् हो जाती है।

अव्यभिचारिणी बुद्धि तो अशांति में भी शांति करवा देती है, प्रज्ञा प्रकट होने से पहले की स्टेज।

स्थितप्रज्ञ दशा और प्रकट प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा व स्थितप्रज्ञ, इन शब्दों में से 'स्थितप्रज्ञ' क्या है, यह समझाइए?

दादाश्री : खुद को सही तरह से पहचानने की जो समझ है न, उसमें स्थिर होना, वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा शब्द से उन शास्त्रों की तरफ ध्यान जाता है

कि आत्मा के बारे में जो ज्ञान दिया गया हो, उसे हमने ग्रहण कर लिया तो फिर प्रज्ञा उत्पन्न होती है। आपने अभी जो बात कही कि प्रज्ञा तो स्वाभाविक ही है।

दादाश्री : वह प्रज्ञा स्वाभाविक है न! यह स्थितप्रज्ञ अलग चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं चंदू भाई हूँ' इससे तो अज्ञदशा हुई है। फिर जब आपके पास आऊँ और आप हमें कहें, 'आप शुद्धात्मा हो' तो उससे स्थितप्रज्ञ बनते हैं।

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ भी नहीं, स्थितप्रज्ञ से आगे की बात है। स्थितप्रज्ञ, वह तो एक दशा है। प्रज्ञा उत्पन्न होने वाली हो, उससे पहले यह दशा आती है। प्रज्ञा शुरू होने वाली हो, तब यह दशा आती है। जो संसार में साक्षीभाव वाली दशा होती है।

प्रज्ञा तो आत्मा प्राप्त होने के बाद उत्पन्न होती है और स्थितप्रज्ञ दशा आत्मा प्राप्त होने से पहले आती है। व्यवहार में वह स्थिति अहंकार सहित होती है लेकिन वह व्यवहार बहुत सुंदर होता है।

प्रश्नकर्ता : क्रमिक मार्ग में प्रज्ञा को आत्मा में स्थिर हो चुकी बुद्धि कहते हैं, तो क्या अपने यहाँ प्रज्ञा का मतलब ज्ञाता-दृष्टापना है?

दादाश्री : वह आत्मा ही है। वह आत्मा का ही भाग है जबकि अन्य कहीं तो स्थिर बुद्धि को स्थितप्रज्ञ दशा कहते हैं। वह प्रज्ञा नहीं है। अर्थात् ऐसी दशा, जिसमें बुद्धि स्थिर हो गई है।

स्थितप्रज्ञ होने के बाद भी कभी अज्ञाशक्ति सवार हो जाती है। स्थितप्रज्ञ की मदद से चली भी जाती है लेकिन स्थितप्रज्ञ दशा में उसके सवार होने का भय भी रहता है। प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होने के बाद भय नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् स्थितअज्ञ दशा में से बाहर निकलने के बाद ही यह स्थितप्रज्ञ दशा प्राप्त हो सकती है?

दादाश्री : नहीं! उसमें तो बुद्धि स्थिर हो जाती है। अज्ञा चंचल होती है। अत: जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई है, वैसे स्थितप्रज्ञ। प्रज्ञा तो वहाँ पर है ही नहीं, स्थितप्रज्ञ दशा है। फिर भी उसे प्रज्ञा कहते हैं, लेकिन वह क्रमिक में है। यह प्रज्ञा तो, प्योर आत्मा का ही अलग हुआ एक भाग है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन टुकड़े नहीं किए जा सकते हैं न आत्मा के, प्रतिष्ठित आत्मा और मूल आत्मा के?

दादाश्री : वह उलझ जाएगा बल्कि। सभी कुछ धारण करके रखने की शक्ति हो, तब जाकर वह उसके सभी विभागों सहित जान सकता है। उतनी जागृति होनी चाहिए न! चारों तरफ *लक्ष* (जागृति) में रखना चाहिए। हम उसका एक-एक अंश जानते हैं।

प्रश्नकर्ता : इस स्थितप्रज्ञ की जो बात है, वह ज़रा और विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : वह तो जब कोई व्यक्ति शास्त्रों का खूब अध्ययन करता है, संतों की सेवा करता है, खूब मेहनत से व्यापार करता है और व्यापार में नुकसान हो जाता है, तब इन सभी प्रकार के अनुभवों में से पार निकलता जाता है। फिर आगे पहुँचकर जब बुद्धि स्थिर हो जाती है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। इधर से हवा आए तो भी यों हिल नहीं जाता, इधर से आए तो भी यों हिल नहीं जाता। ऐसी स्थिर बुद्धि हो तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

स्थितप्रज्ञ दशा बहुत ही सद्विवेक वाली जागृति दशा है। वह अनुभव करते-करते आगे बढ़ता है। जनकविदेही की दशा स्थितप्रज्ञ से भी बड़ी थी।

स्थितप्रज्ञ दशा की तुलना में प्रज्ञाशक्ति बहुत उच्च दशा है। स्थितप्रज्ञ दशा में तो वह व्यवहार में एक नंबर होता है। दूसरा, जिसके प्रति लोगों की तरफ से निंदा जैसी चीज़ न रहे, वह अपने आपको स्थितप्रज्ञ मान सकता है लेकिन यह प्रज्ञा तो मोक्ष में ही ले

जाती है। स्थितप्रज्ञ को तो अभी मोक्ष में जाने के लिए बहुत लंबा मार्ग तय करना पड़ेगा।

अक्रम में तो बहुत उच्च दशा

प्रश्नकर्ता : तो यह स्थितप्रज्ञ, वह प्रज्ञा से पहले की स्थिति है?

दादाश्री : यह प्रज्ञा से पहले की स्थिति है लेकिन लोगों ने तो इसे बहुत बड़ी चीज़ बना दिया है। स्थितप्रज्ञ तो इससे निम्न स्थिति है। उसके बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है। पहले स्थितप्रज्ञ बनता है, उसके बाद धीरे-धीरे-धीरे प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मुझे ऐसा सवाल होता है कि स्थितप्रज्ञ का मतलब है प्रज्ञा प्राप्ति के बाद उसमें स्थिर होना, तो फिर स्थितप्रज्ञ उसके बाद की स्थिति हुई?

दादाश्री : नहीं, वह बाद की स्थिति नहीं है। पहले की स्थिति है। वह (स्थिति) स्थितप्रज्ञ हुई कि मानो स्थिर ही हो गया। स्थितप्रज्ञ का मतलब तो प्रज्ञा ज़रा-ज़रा सी, एक-एक अंश करके आती है और वह खुद उसमें स्थिर होता जाता है। जबकि हम जब यहाँ पर ज्ञान देते हैं, तब तो प्रज्ञा सर्वांश उत्पन्न हो जाती है।

यह जो स्थितप्रज्ञ है, उसकी विपरीत दशा है स्थितअज्ञ। 'मैं चंदू भाई हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ', वह सारी स्थितअज्ञ दशा है। यह जो अज्ञा छूटी और प्रज्ञा उत्पन्न हुई, उसके बाद प्रज्ञा में दु:ख नहीं रहता क्योंकि वह खुद के सनातन सुख का भोगी बन गया।

प्रश्नकर्ता : गीता में जिस स्थितप्रज्ञ दशा की बात कही गई है, वह यही है न?

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ से तो बहुत आगे की स्थिति है यह।

प्रश्नकर्ता : उससे भी आगे?

दादाश्री : बहुत उच्च स्थिति है यह तो। अद्‌भुत स्थिति है यह

तो! कृष्ण भगवान की जो स्थिति थी, वह स्थिति है यह। यह तो क्षायक समकित की स्थिति है। कृष्ण भगवान को क्षायक सम्यक्त्व था यानी कि मिथ्यात्व दृष्टि पूरी तरह से खत्म हो चुकी थी।

सम्यक् दृष्टि अर्थात् आत्मा की ही दृष्टि उत्पन्न हुई है, अत: यह तो बहुत उच्च दशा है। स्थितप्रज्ञ वगैरह तो इससे बहुत निम्न कोटि की दशा है लेकिन लोगों को स्थितप्रज्ञ समझ में नहीं आया।

स्थितप्रज्ञ दशा भी नहीं हुई है क्योंकि लोगों को स्थितप्रज्ञ किस प्रकार से होता है? उसे ऐसा लगता है कि 'मैं आत्मा हूँ' कुछ देर के लिए उसमें स्थित रह पाए और फिर वापस विचलित हो जाए, तो वह स्थितप्रज्ञ है। प्रज्ञा में स्थिर होने जाता है और वापस विचलित हो जाता है। उसमें निरंतर रह ही नहीं पाता न! पूरा साइन्स हाथ में नहीं आता न! क्योंकि चार वेद पढ़ने के बाद वेद इटसेल्फ कहते हैं, 'दिस इज़ नॉट देट। दिस इज़ नॉट देट। दिस इज़ नॉट देट।' तो व्हॉट इज़ देट? तब कहते हैं 'गो टू ज्ञानी।' क्योंकि उस अवक्तव्य, अवर्णनीय को शब्दों में कैसे उतारा जा सकता है? आत्मा शब्दों में कैसे उतारा जा सकता है? इसलिए उसे अवक्तव्य कहा है, अवर्णनीय कहा है।

जो नहीं खाता, नहीं पीता और नहीं बोलता, वह है आत्मा

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ की भाषा क्या होती है? वह किस प्रकार का भोजन खाता है और क्या पीता है?

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ की दशा बहुत उच्च है, भाषा उच्च है लेकिन उसमें कभी टेढ़ा भी बोल लेता है। लो! क्या खाता है? उस दशा का और खाने-पीने का लेना-देना ही क्या है? क्योंकि खाने वाला तो बिल्कुल अलग ही है। खाने वाला मुक्त होने वाले से बिल्कुल अलग ही है। जो बंधा हुआ है, खाने वाला उससे बिल्कुल अलग है। जो मुक्त होने की इच्छा रखता है, खाने वाला उससे भी अलग है। फिर उसे लेना-देना ही क्या है खाने वाले से? यह सूक्ष्म बात कौन बताए? कोई बता सकता है? आपको क्या लगता है? अलग है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : अलग है।

दादाश्री : खाने वाला अलग ही है इसीलिए तो हमने भेद बताया। भाई, कोई परेशानी नहीं है। आप जो भी खाते हो, उससे हमें कोई परेशानी नहीं है। तो कहते हैं 'कपड़े पहनें?' 'फर्स्ट क्लास कपड़े पहनना।' शरीर ही पहनता है न?' इयरिंग भी पहनना। 'बालियाँ पहनें?' तो कहा 'बाली भी पहनना।' ये इस प्रकार से अलग हैं, ऐसा देखने के बाद ही हम यह बात बताएँगे न, नहीं तो बताएँगे ही नहीं न! क्योंकि यह देह मुक्त होने वाले से बिल्कुल अलग है। खाने वाला, पीने वाला, रंग-राग करने वाला, चाय-पानी पीने वाला, टेस्ट से पीने वाला, मूँछ पर हाथ फेरने वाला, सभी अलग हैं। जो बंधन में है, उससे भी वह अलग ही है। बंधा हुआ तो ऐसा कुछ करेगा ही नहीं न? बंधा हुआ तो 'बंधन' को जानता है। जो बंधन को जानता है और बंधन को अनुभव करता है, उसे कहते हैं, बंधा हुआ। ये सभी लोग तो बंधे हुए नहीं कहलाएँगे न? बंधे हुए यह जानते ही नहीं हैं। हम बंधे हुए हैं, ऐसा उन्हें भान ही नहीं है।

यह जो स्थितप्रज्ञ शब्द है, वह व्यवहारिक शब्द है।

बुद्धि इतनी अधिक स्थिर हो चुकी होती है कि चाहे कैसी भी मुश्किल आए लेकिन उसमें ज़रा सा भी नहीं डरता। बुद्धि का विभाग है वह। बुद्धि स्थितप्रज्ञ तक पहुँच चुकी है और प्रज्ञा अभी तक प्रकट नहीं हुई है। सभी जीवों की अज्ञ दशा है।

निन्यानवे तक स्थितप्रज्ञ और प्रज्ञा है सौ पर

कृष्ण भगवान ने जिस स्थितप्रज्ञ दशा का वर्णन किया था, वह प्रज्ञा से भी निम्न दशा है।

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ निम्न दशा है?

दादाश्री : प्रज्ञा से निम्न दशा है। स्थितप्रज्ञ दशा अर्थात् बुद्धि से होते, होते, होती जाती है। फिर वह बुद्धि भी कौन सी? अव्यभिचारिणी

बुद्धि। कृष्ण भगवान ने दो प्रकार की बुद्धि के बारे में बताया था। व्यभिचारिणी और अव्यभिचारिणी। अव्यभिचारिणी बुद्धि स्थिर हो जाती है, अस्थिर तो है ही अभी। अस्थिर अर्थात् इमोशनल। स्थिर होती जाती है दिनों दिन। स्थिर होने के बाद जैसे संख्या में सतानवे के बाद अठानवे, निन्यानवे गिना जाता है और सौ को मुख्य चीज़ कहा जाता है। तब जाकर पूर्णाहुति होती है, हन्ड्रेड परसेन्ट, सेन्ट परसेन्ट है, ऐसा कहते हैं। यह जो स्थितप्रज्ञ दशा है, वह बुद्धि की स्थिरता का सेन्ट परसेन्ट है और प्रज्ञा तो है ही फुल चीज़, मूल वस्तु है।

प्रश्नकर्ता : 'स्थितप्रज्ञ दशा आत्मा की अनुभव दशा नहीं है', वह समझाइए।

दादाश्री : जब प्रज्ञा पूर्ण दशा तक पहुँचती है, तब आत्मानुभव होता है। स्थितप्रज्ञ, जब तक 'स्थित' विशेषण है, तब तक वह अनुभव नहीं कहा जा सकता, लेकिन जब विशेषण खत्म हो जाए और सिर्फ प्रज्ञा रहे, तब अनुभव है।

जो बुद्धि स्थिर हो जाती है, उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं। उसके परिणाम बदलते नहीं हैं और जब विशेषण खत्म हो जाते हैं, तब प्रज्ञा कहलाती है। तब अंतिम दशा में अनुभव होता है। निन्यानवे तक पहुँचता है, तब तक स्थितप्रज्ञ और जब सौ तक पहुँच जाए, तब प्रज्ञा।

मोह मिटा और हुए स्थिर अचल में

प्रश्नकर्ता : अर्जुन कहते हैं कि 'नष्टो मोह स्मृतिलब्ध स्थितोस्मि।'

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह तो स्थिर हो ही गया न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो मुझे यह जानना है कि किस प्रकार से?

दादाश्री : जिसमें इतने लक्षण आ जाएँ, जिसका मोह नष्ट हो गया है, तो वह स्थिर होने की निशानी हुई। दूसरी उसे यह हेल्प हुई कि स्मृतिलब्धा हो गई अर्थात् दूसरी हेल्प हुई। इन सभी कारणों से वह स्थिर हो रही है और कुछ-कुछ स्थिर रहती है। तभी से उसे

स्थितप्रज्ञ दशा कहा गया है। यदि इस प्रकार से स्थिर रह सके तो। हालाँकि वे ऐसा कहते हैं कि 'मेरा मोह खत्म हो गया है।' वह तो बहुत उच्च दशा कही जाती है।

प्रश्नकर्ता : यहाँ पर सामान्य तौर पर सभी की स्थिति लट्टू जैसी है, तो ये अर्जुन भी मनुष्य ही थे और उन्होंने 'स्थितोस्मि' कहा था। उसमें लिखा गया है कि उन्होंने कृष्ण भगवान से कहा, 'हे अच्युत! आपकी कृपा से मैं स्थिर हो गया हूँ।' तो क्या मनुष्यों में ऐसी विरोधाभासी स्थिति आ सकती है?

दादाश्री : लट्टू खत्म हो गया और वह खुद रियल में आ गया। प्रकृति के रहते हुए भी रियल में आ गया। क्योंकि देहाध्यास में उसकी जो मान्यता थी कि 'मैं यह हूँ,' वह मान्यता पूरी ही टूट गई। क्योंकि मोह नष्ट हो गया था और मान्यता इसमें आ गई कि 'मैं यह शुद्धात्मा हूँ'। यह प्रकृति सचल है और मूल आत्मा अचल है, अत: सचल में जो मान्यता थी, वह खत्म हो गई और अचल में मान्यता उत्पन्न हुई, अत: फिर वह स्थिर हो गया।

जब तक शंका, तभी तक स्थितअज्ञ

इन लोगों को खुद की कितनी भूलें दिखाई देती हैं?

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा नहीं हो तो खुद की भूलें नहीं दिखाई देंगी!

दादाश्री : हाँ, और फिर दूसरी तरफ कितने ही लोग ऐसा भी पूछते हैं कि, 'क्या मेरी दशा स्थितप्रज्ञ है?' मैंने कहा, ऐसा क्यों पूछना पड़ा? आपको शंका हुई? अगर शंका हो तो मान लेना कि आपकी दशा स्थितअज्ञ है।' तो यह पोल (ध्रुव) सामने की तरफ का नहीं है न! नोर्थ तो गया। नोर्थ पोल (उत्तर ध्रुव) हाथ में नहीं आए तो इसका मतलब क्या वह साउथ पोल पर नहीं है?

प्रश्नकर्ता : स्थितअज्ञ का अर्थ समझाइए?

दादाश्री : अज्ञान में ही मौज-मज़े मानता है और उसी में स्थित

रहता है। यदि अज्ञान में अस्थिर हो जाए तो समझना कि आगे बढ़ा। अज्ञान में यदि अस्थिर हो जाए तो किसमें आगे बढ़ा? तब कहा जाएगा कि वह प्रज्ञा की तरफ आगे बढ़ा।

स्थितप्रज्ञ दशा से आगे

प्रश्नकर्ता : 'स्थितप्रज्ञ दशा से बहुत-बहुत आगे कुछ है', वह समझाइए।

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ दशा, वह एक प्रकार की ऐसी दशा है कि वैकुंठ में जाते हुए बुद्धि स्थिर हो जाती है। कृष्ण भगवान का जो वैकुंठ है, कृष्ण भगवान की उस बात को सुनते-सुनते, जैसे-जैसे गीता का अभ्यास बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे बुद्धि स्थिर होती जाती है और जिसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है, उसे भगवान ने स्थितप्रज्ञ कहा है। उससे आगे तो बहुत कुछ जानना बाकी है। अभी तो वह इस एक जगह का वीज़ा पाने के लायक हुआ है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् शुद्ध समकित और परमार्थ समकित?

दादाश्री : नहीं। वह शुद्ध समकित नहीं है। शुद्ध समकित से भी निम्न कक्षा का समकित है। अभी तो, अगर कभी उल्टे संयोग मिल जाएँ तो उल्टा भी कर ले, लेकिन बुद्धि स्थिर हो गई है इसलिए डिगेगा नहीं।

हाँ अत: समकित कब है? उसमें कुछ उल्टा नहीं घुसे, तब समकित कहा जाएगा। कोई भी संयोग उसे हिला नहीं सके, तब समकित कहा जाएगा। जबकि स्थितप्रज्ञ को संयोग हिला देते हैं इसलिए उसे भय रहता है। लेकिन बुद्धि स्थिर हो जाने के बाद समझदारी आती है। बहुत उच्च प्रकार की समझदारी आ जाती है। अभी स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य बहुत ही कम होंगे, शायद ही कोई होंगे। हिन्दुस्तान में एक दो, वर्ना वह भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ वाले में प्रज्ञा कभी जागृत ही नहीं हुई थी?

दादाश्री : नहीं। इस काल में स्थितप्रज्ञ नहीं होते, सत्युग में स्थितप्रज्ञ हो सकते हैं। इस काल में तो अगर बेटी कॉलेज जा रही हो और अगर शाम को न आए तो सोचते हैं कि 'क्यों नहीं आई?' तो पता चलता है, 'उसने शादी कर ली।' बोलो, फिर बुद्धि स्थिर कैसे रहेगी? और उन दिनों यों शादी नहीं कर लेते थे। ऐसा नहीं होता था। कोई परेशानी ही नहीं आती थी। अभी तो बुद्धि स्थिर कैसे रह सकती है? पलभर में बेटी शादी कर लेती है। पलभर में पत्नी डिवॉर्स ले लेती है, ऐसे ज़माने में इंसान की बुद्धि स्थिर कैसे रह सकती है? नहीं रह सकती। यह तो धन्य है इस अक्रम विज्ञान को कि सभी का कल्याण कर दिया। 50,000 लोगों का कल्याण हो गया। ज़रा कम ज़्यादा रहा होगा लेकिन कल्याण तो ज़बरदस्त हो गया।

अहंकार का स्थान स्थितप्रज्ञ में?

प्रश्नकर्ता : क्या स्थितप्रज्ञ अहंकार का लक्षण है?

दादाश्री : अहंकार होते हुए भी स्थितप्रज्ञ हो जाए, यों दोनों साथ में हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : और नहीं भी हो सकता?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है, होता ही है।

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ और वीतराग के बीच की डिमार्केशन लाईन बताइए। दोनों के बीच की लक्ष्मणरेखा...

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ अर्थात्, अहंकार की उपस्थिति में संसार का सार-असार निकालकर बुद्धि का स्थिर हो जाना, वह स्थितप्रज्ञ है। स्थितप्रज्ञ दशा को विवेक ही माना जाएगा। वह सार-असार के विवेक को समझता है।

प्रश्नकर्ता : और क्या वीतरागता में अहंकार की हाज़िरी नहीं है?

दादाश्री : नहीं! सार-असार निकाला इसलिए अब वीतरागता

की ओर चला। उसने सार निकाल लिया यहाँ पर कि इसमें सुख नहीं है, लेकिन अहंकार की उपस्थिति में। अब यहाँ उसे आगे जाने का रास्ता मिल गया, यहाँ से शुरुआत हो गई।

अब अपने यहाँ पर स्थितप्रज्ञ नहीं है, प्रज्ञा है। स्थितप्रज्ञ अहंकारसहित होता है, और यह प्रज्ञा अहंकाररहित होती है। अत: स्थितप्रज्ञ होने के बाद तो बहुत समय बाद 'वस्तु' (आत्मा) की प्राप्ति होती है और प्रज्ञा तो कुछ जन्मों में, एक-दो जन्मों में मोक्ष में ले जाती है।

फर्क, स्थितप्रज्ञ और वीतराग में

प्रश्नकर्ता : तो फिर स्थितप्रज्ञ और वीतराग में क्या फर्क है?

दादाश्री : बहुत फर्क है। स्थितप्रज्ञ का मतलब क्या है कि खुद-अपनी बुद्धि से सोच-सोचकर स्थिर होता है। और क्योंकि स्थिर हो जाता है इसलिए खुद अपने सॉल्यूशन ला सकता है। लेकिन वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। सिर्फ इतना ही है कि स्थितप्रज्ञ ने बुद्धि को स्थिर कर लिया है। अन्य कुछ नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा कहा गया है कि उसमें भी राग-द्वेष रहितता है, वीतराग जैसी।

दादाश्री : नहीं, वह राग-द्वेष रहित दशा नहीं है। लेकिन हर एक प्रश्न का सॉल्यूशन ले आता है। इसीलिए वह किसी पर राग-द्वेष नहीं करता न! सॉल्यूशन आ जाए तो फिर कौन करेगा? सबकुछ बुद्धि से। अव्यभिचारिणी बुद्धि की स्थिरता को स्थितप्रज्ञ कहा गया है। जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई है। लोगों की बुद्धि अस्थिर होती है। स्थिर हो चुकी बुद्धि ही स्थितप्रज्ञ कहलाती है क्योंकि बहुत बढ़ते-बढ़ते, अज्ञा में से आगे बढ़ते-बढ़ते अंत में वह प्रज्ञा तक पहुँचती है।

अभी तो उसे वीतरागता की स्टडी करनी है, वीतराग मार्ग की स्टडी करनी है। वीतराग मार्ग हाथ में आ गया है और धीरे-धीरे वीतरागता बढ़ती जाएगी। स्थितप्रज्ञ के स्टेशन पर आने के बाद वीतरागता का गुण बढ़ता जाता है।

प्रश्नकर्ता : और स्थितप्रज्ञ का संबंध दया से है या करुणा से?

दादाश्री : हाँ! दया से है। करुणा नहीं होती। वीतराग भगवान के अलावा अन्य किसी में करुणा नहीं हो सकती। करुणा का अर्थ क्या है? राग भी नहीं और द्वेष भी नहीं। चूहे को बचाने में राग नहीं और बिल्ली के प्रति द्वेष नहीं, उसे कहते हैं करुणा।

ये खोज, प्रज्ञा से या बुद्धि से?

प्रश्नकर्ता : ये साइन्टिस्ट जो खोज (रिसर्च) वगैरह करते हैं, वह प्रज्ञा से है? नहीं तो फिर वह क्या होता है? बुद्धि से?

दादाश्री : नहीं, उनमें दर्शन होता है। दर्शन के बिना तो कभी साइन्टिस्ट बना ही नहीं जा सकता। वह दर्शन कुदरती है। कुदरत ने उसे हेल्प की, वह उसका दर्शन ही है।

प्रश्नकर्ता : ये जो 'अखो' वगैरह सारे संत हो चुके हैं, उनमें प्रज्ञा थी या नहीं?

दादाश्री : नहीं, वह दर्शन कहलाता है। प्रज्ञा नहीं कहलाती। प्रज्ञा, आत्मा प्राप्त होने के बाद प्रज्ञा कहलाती है। लौकिक भाषा में उसे प्रज्ञा कहते हैं लेकिन लौकिक का यहाँ पर चलेगा नहीं न! लौकिक का यहाँ क्या करना है? लौकिक को वहाँ पर पैसे नहीं देते!

प्रज्ञा सावधान करती है अहंकार को

प्रश्नकर्ता : जब कुछ विचार आते हैं, तब हम उनसे कहते हैं कि 'तेरा यह सब गलत है।' अब, यह कहने वाला कौन है? आपसे मिलने के बाद! पहले तो ऐसा कुछ था ही नहीं। तो वह मार्गदर्शन कौन देता है? प्रज्ञा या बुद्धि?

दादाश्री : हमें प्रज्ञा सचेत करती है क्योंकि अब मोक्ष में जाने का वीज़ा मिल गया है। उसके बाद यदि मनुष्य अहंकार करके उस प्रज्ञा को दबा देता है, तो फिर वापस पागलपन करता है।

प्रश्नकर्ता : अंदर जो यह प्रज्ञा सचेत करती है, तो वह मन द्वारा सचेत करती है या बुद्धि द्वारा सचेत करती है? चित्त द्वारा या अहंकार द्वारा सचेत करती है?

दादाश्री : प्रज्ञा अहंकार को सचेत करती है, अन्य किसी को नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या डायरेक्ट सचेत करती है?

दादाश्री : डायरेक्ट! अन्य किसी को अधिकार ही नहीं है न! अहंकार का कोई *ऊपरी* नहीं है। अहंकार का कोई *ऊपरी* नहीं है, फिर भी पूरे दिन वह करता तो है सारा बुद्धि का कहा हुआ।

प्रश्नकर्ता : यह प्रज्ञा जब अहंकार को सचेत करती है, तब बुद्धि क्या करती है? तब फिर क्या बुद्धि अलग रहती है?

दादाश्री : बुद्धि को क्या लेना-देना? बुद्धि नाम ही नहीं लेती।

प्रश्नकर्ता : तो फिर कुछ भी नहीं?

दादाश्री : बुद्धि का कार्य ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा के हाज़िर हो जाने पर बुद्धि का अस्तित्व ही नहीं रहता न?

दादाश्री : अत: फिर बुद्धि उसकी हेल्प करती है अहंकार के कहे अनुसार।

प्रश्नकर्ता : अच्छा, तो फिर इसे सीधा भी बुद्धि ही कर देती है?

दादाश्री : फिर सभी मिलकर सीधा कर देते हैं। सिर्फ बुद्धि ही नहीं, सभी।

दादा का निदिध्यासन करवाए प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : आज सुबह सामायिक में आपका ही निदिध्यासन रहा। वह क्या है? मैं उसे शुद्ध चित्त समझता हूँ।

दादाश्री : नहीं, वह सारा काम तो प्रज्ञाशक्ति का है। शुद्ध चित्त तो आत्मा खुद ही है। शुद्धात्मा ही शुद्ध चिद्रूप (चित्त स्वरूप) है। यह सब तो प्रज्ञा करती है।

प्रश्नकर्ता : सभी जगह दादा बैठे हुए दिखाई देते हैं। वह क्या है?

दादाश्री : वही प्रज्ञा है न। अज्ञाशक्ति तो दूसरा ही दिखाती है। जो लक्ष्मी दिखाती है, स्त्रियाँ दिखाती है, वह अज्ञाशक्ति है। अज्ञाशक्ति स्त्री का निदिध्यासन करवाती है और प्रज्ञाशक्ति ज्ञानीपुरुष का। ज्ञानीपुरुष अर्थात् आत्मा का निदिध्यासन करवाती है।

प्रश्नकर्ता : अब जिसने अभी ज्ञान लिया है, उसे भी स्त्री का निदिध्यासन हो जाता है तो क्या वह अज्ञा डिपार्टमेन्ट है?

दादाश्री : वह तो चंदू भाई का भाग है, उससे हमें क्या लेना-देना?

प्रश्नकर्ता : नहीं, तो फिर उसमें चित्त का फंक्शन कहाँ पर आया?

दादाश्री : वह तो चंदू भाई का भाग है, अशुद्ध चित्त है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह प्रज्ञा ज्ञानीपुरुष का जो निदिध्यासन करवाती है, उसमें चित्त का फंक्शन कहाँ आया?

दादाश्री : उसमें चित्त की ज़रूरत है ही नहीं। प्रज्ञाशक्ति खुद ही देख सकती है।

प्रश्नकर्ता : इसे एक्ज़ेक्ट फोटोग्राफी कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, एक्ज़ेक्ट! फोटोग्राफी से भी अच्छा। फोटोग्राफी में इतना अच्छा नहीं आता। सपने में तो फोटोग्राफी से भी ज़्यादा अच्छा दिखाई देता है। स्वप्न में तो प्रत्यक्ष देखने से भी ज़्यादा अच्छा आता है।

प्रश्नकर्ता : चित्त का काम ही नहीं रहा।

दादाश्री : शुद्ध चित्त था, वह आत्मा में एक हो गया। आत्मा में मिल गया।

शुद्ध चित्त, वही शुद्धात्मा!

प्रश्नकर्ता : तो निदिध्यासन को देखने वाला कौन है?

दादाश्री : वह प्रज्ञाशक्ति है।

प्रश्नकर्ता : वह खुद ही देखती है और खुद ही धारण करती है?

दादाश्री : वह खुद ही है सबकुछ। उसी की हैं सभी क्रियाएँ। चित्त की ज़रूरत ही नहीं रही वहाँ पर। जब तक अशुद्ध चित्त है तब तक सबकुछ संसार का ही दिखाई देता है उसे। अशुद्ध चित्त, शुद्ध की बातें नहीं देख सकता। अत: जब चित्त शुद्ध हो जाता है तब आत्मा में एक हो जाता है। आत्मा में मिल जाता है, बचा कौन? बीच में कोई नहीं बचा। प्रज्ञाशक्ति चलती रहती है बस। अगर दखल रहे तो वापस शुद्ध चित्त भी बिगड़ता जाता है। अगर अंधेरा हो न, तो वापस बिगड़ता जाता है, तो उसे वापस कहाँ रिपेयर करवाने जाएँ? उसके कारखाने तो कहीं भी नहीं होते। और प्रज्ञाशक्ति को हमें रिपेयर नहीं करना पड़ता। जो वस्तु है, अगर उसे रखा जाए तो रिपेयर करवाने नहीं जाना पड़ेगा। जो वस्तु नहीं है, उसे तो बिगड़ने पर रिपेयर करवाने जाना पड़ेगा। अत: बीच में किसी चीज़ की कोई ज़रूरत नहीं है। सभी क्रियाएँ प्रज्ञा करती है।

प्रश्नकर्ता : यह चित्त जब शुद्ध हो जाता है, तब प्रज्ञा उत्पन्न होती है न?

दादाश्री : चित्त जब शुद्ध हो जाता है तब शुद्धात्मा में मिल जाता है। उसके बाद प्रज्ञाशक्ति की शुरुआत हो जाती है। शुद्ध चित्त, वही शुद्ध चिद्रूप आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानीपुरुष का निदिध्यासन रहता है, उसे आपने प्रज्ञा

कहा है तो आप ऐसा भी कहते हैं न कि जितना अधिक निदिध्यासन रहेगा उतना ही चित्त शुद्ध होगा?

दादाश्री : चित्त शुद्धि तो हो चुकी है न!

प्रश्नकर्ता : जड़ से हो गई है संपूर्ण, तो वह जो अशुद्ध चित्त है, उसका क्या होता है?

दादाश्री : अशुद्ध चित्त तो सभी सांसारिक कार्य कर लेता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार! क्या शुद्ध चित्त कभी दखल करता है? अशुद्ध चित्त हो तो दखल हो जाती है बीच में। शुद्ध चित्त होगा तो दखल नहीं होगी। यदि तीसरा व्यक्ति होगा तभी दखल होगी। दखल होती है? आप तो निदिध्यासन करके आते हो कभी।

प्रश्नकर्ता : निदिध्यासन करने में किसकी दखल रहती है?

दादाश्री : वे तो ये उदयकर्म हैं।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि यदि वह प्रज्ञा का खुद का स्वतंत्र डिपार्टमेन्ट होता तो प्रज्ञा सभी महात्माओं में उत्पन्न हो चुकी है, उसके बावजूद भी अपने महात्माओं को ज्ञान के बाद में एक सरीखा...

दादाश्री : सभी को एक सरीखा ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, हर एक को उसके सामर्थ्य के अनुसार होता है, फिर उसी अनुसार आज्ञा पालन हो पाता है।

प्रश्नकर्ता : यानी आपने सामर्थ्य के अनुसार कहा। ऐसा क्यों?

दादाश्री : ऐसा ही है न! उसका निश्चय बल वगैरह ऐसा सब होना चाहिए न! अलग-अलग नहीं होता हर एक का? हर एक का अलग। तेरा अलग, उसका अलग, इन सब का अलग-अलग है न।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप ऐसा कहते हैं न कि चित्त तो सभी का पूर्णतः शुद्ध हो चुका है?

दादाश्री : हाँ, तभी तो आत्मा प्राप्त होगा न!

प्रश्नकर्ता : तो यदि शुद्ध चित्त पूर्णत: शुद्ध हो जाएगा तो उतनी ही प्रज्ञा उत्पन्न होगी?

दादाश्री : हाँ। हम जब ज्ञान देते हैं तब आत्मा शुद्ध हो जाता है इसलिए प्रज्ञा उत्पन्न हो ही जाती है। फिर उसकी पाँच आज्ञा पालन करने की जो शक्ति है न, उसके जितने प्रयत्न रहते हैं उतना ही उसका लाभ कम होता जाता है!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जितना आज्ञा का पालन किया जाए उतनी ही प्रज्ञाशक्ति खिलती जाती है?

दादाश्री : हाँ, वैसा निश्चयबल होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसमें निश्चय बल किसका है?

दादाश्री : सबकुछ खुद का ही।

प्रश्नकर्ता : ऐसा है कि निश्चय खुद ही करता है और फिर खुद ही बलवान होता जाता है? वह समझ में नहीं आया?

दादाश्री : जब अशुद्ध चित्त और मन वगैरह का ज़ोर रहता है तब निश्चयबल बंद हो जाता है। यह सब जिसमें कम है, उसमें चित्त शुद्धि ज़्यादा मज़बूत रहती है। दखल करते हैं न ये सब, वर्ना हम भले ही कितना भी एकांत में ध्यान करके बैठे हुए हों लेकिन बाहर लोग हो-हो-हो करें तो? इसी प्रकार ये सब बाहर हो-हो-हो होता है न, तो, जिसे ज़्यादा हो-हो-हो होता है, उसका ठिकाना नहीं पड़ता।

प्रश्नकर्ता : यह चीज़ बहुत करेक्ट है। बाहर की हो-हो कम हो जाए तो...

दादाश्री : हमारी यह बाहर की हो-हो नहीं है, तो है क्या कोई झंझट? जबकि आपको तो अगर तीन लोगों की हो-हो रहे तो भी घबराहट हो जाती है, 'मुझे ऐसा कर रहे हैं।' मुझे ऐसा सब स्पर्श

ही नहीं करता न! मैं इस प्रकार से बैठता हूँ। बाहर बैठता ही नहीं न! मुझे शौक नहीं है ऐसा। आपको अगर शौक है तो बाहर बैठकर तीन लोगों के साथ आप हो-हो करो, मैं तो अपने रूम (आत्मा) में बैठे-बैठे (नाटकीय रूप से) हो-हो करता रहता हूँ। इतने सारे लोग! इसका कब अंत आएगा?

प्रश्नकर्ता : आप खुद के रूप में इस तरह सिफत से सरक जाते हैं, चले जाते हैं अंदर।

दादाश्री : बैठा हुआ ही हूँ अंदर। बाहर निकलता ही नहीं हूँ। शायद कभी परछाई दिखाई दी हो तो आपको लगता है कि बाहर निकले होंगे, वही भूल है। वास्तव में वह मैं नहीं हूँ।

प्रश्नकर्ता : वह बात सही है। हम खींचे, फिर भी नहीं आते।

दादा की प्रज्ञा की अनोखी शक्ति

दादाश्री : अगर मैं बाहर निकलूँ तो इन भाई के घर कौन जाएगा? आते हैं न आपके यहाँ सुबह पाँच बजे! वह हमेशा का है न! वे अमरीका वाले भी कहते हैं कि 'मेरे यहाँ आते हैं।' जाते हैं, वह बात तो सही है न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन वह कौन जाता है?

दादाश्री : लेकिन यह हकीकत है न कि जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : लोगों को अनुभव होता है। यहाँ से जाते हैं, वह मालूम नहीं है, लेकिन उन्हें ऐसा लगता है। वह क्या है?

दादाश्री : वह सब तो शक्ति है न, प्रज्ञाशक्ति की ज़बरदस्त शक्ति!

प्रश्नकर्ता : हम दादाजी का स्मरण करते हैं और दादा हमारे घर पर आकर आशीर्वाद देते हैं, वह क्या है? वह फिनोमीना (घटना) क्या है? वह कौन सी प्रक्रिया है?

दादाश्री : वह सारा प्रज्ञा की प्रक्रिया में जाता है।

प्रश्नकर्ता : हम याद करते हैं और दादा आ जाते हैं, तो तब आपका कुछ अंश आता है या संपूर्ण आता है?

दादाश्री : वह सारा प्रज्ञा का काम है। दादा जो याद आते हैं न, वह तो आत्मा के तौर पर एक ही स्वभावी हैं। आपका ही आत्मा दादा बनकर काम कर रहा है। अर्थात् यह चीज़ खुद के भाव पर आधारित है और फिर वे भाव प्रज्ञा के होने चाहिए। तब अगर कोई कहे कि 'अज्ञानी लोगों को भी उनके गुरु दिखाई देते हैं।' तो वह चित्त की शुद्धता है!

प्रश्नकर्ता : तो 'आपकी' तरफ से प्रज्ञाशक्ति काम कर रही है? उन्हें जो अनुभव होता है कि दादा यहाँ पर आए थे, वह आपकी प्रज्ञाशक्ति की वजह से है या उनकी प्रज्ञाशक्ति की वजह से?

दादाश्री : यह जो प्रज्ञाशक्ति है, उसी में से है। जो 'जाते' हैं, उन्हीं की प्रज्ञाशक्ति है।

प्रश्नकर्ता : 'जाती' है का मतलब?

दादाश्री : उनके पास 'जो' आते हैं, 'उनकी' प्रज्ञाशक्ति।

प्रश्नकर्ता : 'उनके पास जो आते हैं,' मूलतः वह ऐसी जो कल्पना करते हैं या उन्हें ऐसा आभास होता है तो वह उनका खुद का ही हुआ न? आपको तो जब बताया तभी पता चला कि आप वहाँ पर गए थे।

दादाश्री : वह तो, अगर उनके भाव होंगे तो मिल जाएगा। उस शक्ति को देर नहीं लगती। सामने वाले का भाव हो तो शक्ति पहुँच जाती है। यहाँ से अमरीका भी पहुँच जाती है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह जो आपकी प्रज्ञाशक्ति है, वह तो वीतराग भाव से है। जो भाव करते हैं, खिंचकर उनके पास चली जाती है।

दादाश्री : खिंचकर चली जाती है। और क्या? जिनका भाव मज़बूत होता है, खिंचकर उनके पास चली जाती है।

प्रश्नकर्ता : क्या आपको पता चल जाता है कि वह खिंचकर चली गई?

दादाश्री : मैं क्यों ध्यान रखता फिरूँ?

प्रश्नकर्ता : नहीं! ध्यान नहीं रखते फिर भी पता चल जाता है क्या?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : यों दिखाई नहीं देता? आपके ज्ञान में यों दिखाई नहीं देता?

दादाश्री : दिखाई देता है लेकिन अगर हम ध्यान रखें तब न! हम उस तरफ क्यों ध्यान रखें? कितने ही लोगों की फिल्में हैं, उसमें मैं कहाँ ध्यान रखूँ और कब उसका अंत आए?

प्रश्नकर्ता : ऐसा करने की क्या ज़रूरत है? देखते रहना है।

दादाश्री : उसमें तो बल्कि इन्टरेस्ट आ जाएगा। ऐसा है कि आदत पड़ जाती है। हमें वह फिल्म देखने की ज़रूरत नहीं है। फिल्म देखनी हो तो थिएटर में जाकर न देख लें? फिल्म तो खत्म हो जाती है तीन घंटों में, जबकि यह तो जाएगी ही नहीं अपने पास से।

समभाव से *निकाल* में प्रज्ञा का रोल

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञाशक्ति का एक नंबर की फाइल पर कंट्रोल है या नहीं?

दादाश्री : नहीं! नो कंट्रोल।

प्रश्नकर्ता : अब मैं कहूँ कि 'चंदू भाई, आप ज़रा इसमें ठीक से ध्यान रखो।' अब चंदू भाई से यह किसने कहा? उस समय जो

व्यवहार क्रिया होती है, वह बुद्धि की है या अहंकार की है या फिर प्रज्ञा की है?

दादाश्री : व्यवहार क्रिया बुद्धि और अहंकार दोनों की है।

प्रश्नकर्ता : उसमें प्रज्ञा है क्या?

दादाश्री : प्रज्ञा नहीं है। प्रज्ञा तो, जो ऐसा बताती है कि समभाव से *निकाल* करना है, वह प्रज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन बुद्धि और अहंकार, उसमें जब ये दोनों भाग लेते हैं तब तो फिर वह क्रिया व्यवस्थित के अधीन रहकर हुई न?

दादाश्री : व्यवस्थित के अधीन ही है, आपकी कोई ज़ोखिमदारी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : जब 'मैं' चंदू भाई से कुछ कहता हूँ, तब तो फिर 'मैं' अर्थात् प्रज्ञा ही कहती है न चंदू भाई से?

दादाश्री : हाँ, वह प्रज्ञा ही कहती है। 'मैं' प्रज्ञा ही है।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद बाकी की क्रिया क्या व्यवस्थित के अधीन होती है?

दादाश्री : हाँ, व्यवस्थित के अधीन है लेकिन अगर व्यवस्थित के अधीन रहकर सामने वाले को हाथ लग जाए तो आपको कहना चाहिए कि 'चंदू भाई अतिक्रमण किया, इसका प्रतिक्रमण करो', बस। उससे फिर वो सेफसाइड रहती है। उसे अगर कोई छोटा-मोटा दु:ख हो जाए तो हर्ज नहीं है, लेकिन प्रतिक्रमण कर लेने के बाद हमें कोई लेना-देना नहीं रहेगा?

प्रश्नकर्ता : फाइलों का *निकाल* कौन करता है?

दादाश्री : वह प्रज्ञाशक्ति है। वही सचेत करती है, सभी कुछ वही करती है। फाइलों का *निकाल* वगैरह सबकुछ वही करती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर चंदू भाई भी फाइल है न, इसीलिए मन

में शंका हुई। इसीलिए मैंने पूछा। वर्ना क्या ऐसा नहीं है कि चंदू भाई सभी फाइलों को देखते हैं?

दादाश्री : ऐसा हो ही नहीं सकता न! चंदू भाई को लेना-देना नहीं है। फाइलों का *निकाल* प्रज्ञाशक्ति करती रहती है और सावधान भी करती है। कुछ भूल हो जाए न तो सचेत करती है। चंदू भाई सचेत नहीं करते। चंदू भाई तो भूल वाले हैं, आत्मा भी सचेत नहीं करता। आत्मा सचेत करने का धंधा नहीं करता। अत: यह सब काम प्रज्ञाशक्ति ही कर रही है। अर्थात् प्रज्ञाशक्ति फाइलों का समभाव से *निकाल* करती है।

निश्चय, अज्ञा-प्रज्ञा के

प्रश्नकर्ता : निश्चय कौन करता है? यह फाइल नंबर वन निश्चय करती है?

दादाश्री : आपको ही करना है! आपको खुद को निश्चय करना है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् शुद्धात्मा निश्चय करता है?

दादाश्री : नहीं, नहीं, शुद्धात्मा नहीं, उसकी प्रज्ञाशक्ति। प्रज्ञाशक्ति निश्चय करवाए बगैर रहती ही नहीं। यह तो ज्ञान मिलते ही निश्चय कर ही लेती है।

प्रश्नकर्ता : दादा ऐसा कहते हैं कि 'इसमें तेरे आज्ञा पालन करने की बात नहीं है। तू निश्चय कर कि तुझे आज्ञा में रहना है, बस। बाकी सब मुझ पर छोड़ दे।' आप ऐसा कहते हैं न?

दादाश्री : सिर्फ आज्ञा का पालन ही करना है। आज्ञा के अनुसार हुआ या नहीं, वह आपको नहीं देखना है। बस! पालन करना है, ऐसा तय करो।

प्रश्नकर्ता : अत: यह जो निश्चय करने की बात है, उसमें हम कहते हैं कि 'तुझे कुछ करना नहीं है'। फिर वापस ऐसा भी कहते हैं कि 'निश्चय कर'।

दादाश्री : वे तो शब्द हैं न, यों सिर्फ शब्द ही। ड्रामेटिक शब्द, उसमें कोई कर्ताभाव नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यानी इसीलिए वह तो सिर्फ भाषा की बात हुई लेकिन यह जो निश्चय है, वह निश्चय कौन करता है?

दादाश्री : वह खुद का ही हुआ है। यह जो प्रज्ञाशक्ति है न, वही यह निश्चय करती है। बस!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे जब ज्ञान नहीं था, तब अहंकार निश्चय करता था, तब प्रज्ञा नहीं करती थी।

दादाश्री : ठीक है। वह अहंकार नहीं लेकिन अज्ञा करती थी। अब प्रज्ञा कर रही है। अज्ञानी के सभी निश्चय अज्ञा करती है और जिसे ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसके प्रज्ञा करती है। अज्ञा और प्रज्ञा दो शक्तियाँ हैं। अज्ञा रोंग बिलीफ है और प्रज्ञा राइट बिलीफ है।

प्रश्नकर्ता : वह निश्चय करती है ऐसा कहने के बजाय क्या ऐसा कहना चाहिए कि 'निश्चय रखना'?

दादाश्री : करना या रखना, जिस भी शब्द से अपना मनचाहा सिद्ध होता है, वही करना है। शब्द चाहे कोई सा भी बोलो, 'करो या रखो', उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा निश्चय करती है या करवाती है?

दादाश्री : वह निश्चय करती है, करवाती है, सबकुछ उसी एक में आ जाता है। वह अलग-अलग नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा भी कह सकते हैं न कि निश्चय करवाती है, निश्चय रखवाती है?

दादाश्री : हाँ, कहा जा सकता है। कुल मिलाकर वही का वही है। वह एक ही चीज़ है। इसमें हाथ डालने जाएँगे तो पोस्टमॉर्टम हो जाएगा, बेकार ही बिगड़ जाएगा। हम जो कहना चाहते हैं न, वह आशय खत्म हो जाएगा। इसमें हाथ नहीं डालना है। सीधी-सादी बात

समझ लेनी है। भाई, यह प्रज्ञा कर रही है और यह अज्ञा कर रही है, बस। बुद्धि उसमें वापस तरह-तरह के स्वांग भरती है।

प्रज्ञा में किस प्रकार से रहें तन्मय?

प्रश्नकर्ता : 'यह भरोसे वाली और यह बिना भरोसे की पूँजी है,' ऐसा ध्यान रखने वाला कौन है?

दादाश्री : यह सारा प्रज्ञाशक्ति का ही काम है लेकिन जब प्रज्ञाशक्ति अपना काम नहीं संभालती, तब 'डिस्चार्ज' अहंकार ही सारा काम करता रहता है। वह जब ऐसा करे तब हमें उसे देखना है कि किसमें तन्मयाकार है! इसमें, प्रज्ञा में तन्मयाकार रहना चाहिए, उसके बजाय उसमें तन्मयाकार, स्लिप हो जाता है। यदि जागृति रहेगी तो प्रज्ञा में रह पाएगा। अगर उसमें चला जाएगा तो अजागृति रहेगी।

प्रश्नकर्ता : आपने जो ज्ञान दिया है तो उसे जागृति में तो रहना ही है।

दादाश्री : उसकी इच्छा तो है लेकिन रहता नहीं है। आदत पड़ी हुई है न! पिछली आदत पड़ी हुई है इसलिए फिर उस तरफ चला जाता है लेकिन जिसका भाव स्ट्रोंग है, वह तो गए हुए को भी वापस बुला लेता है कि 'अरे! नहीं जाना है।' पता तो चलता है न खुद को!

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा में तन्मयाकार रहने को कहा है, तो वह ज़रा ठीक से खुलासा करके समझाइए।

दादाश्री : सिन्सियर रहना है। किसके प्रति सिन्सियर है? अब आपको अगर मोक्ष में जाना है तो प्रज्ञा के प्रति सिन्सियर रहो और यदि मौज़-मज़े उड़ाने हैं तो कुछ देर के लिए उस तरफ चले जाओ। अभी अगर कर्म के उदय ले जाते हैं तो वह अलग बात है। कर्म का उदय घसीटकर ले जाए तो भी हमें इस तरफ का रखना है। नदी उस तरफ खीचेंगी लेकिन हमें तो किनारे पर जाने के लिए ज़ोर लगाना है। नहीं लगाना चाहिए? या फिर जैसे वह खींचे वैसे खिंच जाना है?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यदि उसका निश्चय पक्का होगा, तभी सिन्सियर रहेगा न?

दादाश्री : पक्का होगा तभी रह पाएगा न! नहीं तो फिर जिसका निश्चय ही नहीं है, उसका क्या? नदी जिस तरफ खींचेगी उसी तरफ चला जाएगा। किनारा तो न जाने कहाँ रह जाएगा। हमें तो किनारे की तरफ जाने के लिए ज़ोर लगाना चाहिए। नदी उस ओर खींचेगी पर हमें इस तरफ आने के लिए हाथ-पैर मारने चाहिए। थोड़ा बहुत, जितना खिसक पाए, उतना ठीक है। तब तक तो अंदर ज़मीन में आ जाएगा।

अर्थात् इस विज्ञान से, मोक्ष के लिए उसे सावधान करने वाली प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न हो जाती है। उसके बाद उसे खुद पॉज़िटिव रहना चाहिए। नेगेटिव सेन्स नहीं रखना चाहिए। पॉज़िटिव अर्थात् उसमें अपनी खुशी होनी चाहिए और पॉज़िटिव सेन्स रखते भी हैं सभी और फिर इस संसार की कोई अड़चन भी स्पर्श नहीं होने देते। यदि वह खुद ठीक तरह से रहे न, तो अंदर ऐसी सेटिंग हो जाती है कि संसार की कोई अड़चन स्पर्श नहीं होने देता! क्योंकि जब आत्मा प्राप्त नहीं हुआ था अर्थात् भगवान प्राप्त नहीं हुए थे तब भी संसार चल ही रहा था तो क्या प्राप्त होने के बाद वह बिगड़ जाएगा? नहीं बिगड़ेगा।

प्रज्ञा कौन से भाग को सचेत करती है?

प्रश्नकर्ता : फिर यह जो प्रज्ञा है, क्या वह प्रतिष्ठित आत्मा को सचेत करती है?

दादाश्री : हाँ, वह प्रतिष्ठित आत्मा के अहंकार वाले भाग को सचेत करती है। हाँ, जिसे मुक्त होना है, उस भाग को। बंधने का अहंकार और मुक्त होने का अहंकार। वह मुक्त होने वाले अहंकार को सचेत करती है।

प्रश्नकर्ता : तो वास्तव में वह चंदू भाई को ही सचेत करती है न? ऐसा ही हुआ न?

दादाश्री : नहीं! अहंकार को। चंदू भाई नाम का जो मालिक है, अहंकार। अहंकार दो प्रकार के हैं। एक वह अहंकार जिसने यह खड़ा किया। वह अहंकार चला गया। यह वह अहंकार है जो मुक्त होने के लिए वापस लौट रहा है....

प्रश्नकर्ता : उसे सचेत करती है?

दादाश्री : हाँ अर्थात् जो मुक्त होना चाहता है, उसे हेल्प हो गई। बाकी, जो मुक्त होना चाहता है, ऐसा अहंकार हर एक में है तो सही लेकिन जब तक उसमें प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होगी, तब तक कौन कहेगा? इसलिए उलझा रहता है।

भूल के सामने प्रतिभाव किसका?

प्रश्नकर्ता : अगर हम कोई भूल करते हैं तो अंदर प्रज्ञा सचेत करती है। अब वहाँ पर, जो भूल करते हैं, अंदर जो प्रतिभाव होता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए, तो वह कौन बताता है? क्या वह भी प्रज्ञा करती है? जो ऐसा प्रतिभाव दर्शाता है, वह और प्रज्ञा दोनों साथ-साथ रहते हैं?

दादाश्री : प्रकाश प्रज्ञा का है। उस प्रकाश में जो चित्तवृत्ति शुद्ध हो चुकी है, वह वृत्ति ऐसा करती है लेकिन प्रकाश प्रज्ञा का है। अत: ऐसा कहा जाता है कि प्रज्ञा कर रही है। सभी दोष बताती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जो भूल होती है उसके सामने प्रज्ञा का जो हावभाव है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए', ऐसा जो प्रतिभाव होता है, वे दोनों साथ में ही होते हैं?

दादाश्री : वह प्रतिभाव नहीं कहलाता।

प्रश्नकर्ता : 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह प्रतिभाव नहीं है? हम से कोई खराब भाव हो जाए तो उसके विरुद्ध ऐसा होता है न?

दादाश्री : वह आत्मभाव है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए' और

जो हो जाता है, वह देहाध्यास भाव है। दोनों के भाव अलग हैं न! आत्मभाव स्वभाव भाव है और यह विभाव भाव है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या प्रज्ञाशक्ति ही विशेष भाव है?

दादाश्री : नहीं। क्रोध-मान-माया-लोभ को विशेष भाव कहा जाता हैं। मैं-अहंकार वगैरह सब विशेष भाव कहे जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मधर्म का कुछ पुरुषार्थ करना, वह किसकी क्रिया है?

दादाश्री : वह सारी प्रज्ञाशक्ति है। प्रज्ञाशक्ति कब तक रहती है? जब हमें यह ज्ञान मिलता है, तब आत्मा बन जाते हैं लेकिन अभी तक आत्मा श्रद्धा में, प्रतीति में, दर्शन में है लेकिन ज्ञान में नहीं आया है। जब तक यह चारित्र में नहीं आ जाता तब तक प्रज्ञाशक्ति काम करती रहती है।

प्रज्ञा के परिणाम कौन भोगता है?

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा से कोई काम होता है, प्रज्ञाशक्ति काम करती है तो उसके जो परिणाम आते हैं, वे परिणाम कौन भोगता है?

दादाश्री : भोगना कैसा? प्रज्ञाशक्ति द्वारा की गई चीज़ में भोगना नहीं होता। आनंद ही होता है और आनंद खुद का स्वभाव है। जिसे वह आनंद नहीं था, वह भोगता है।

प्रश्नकर्ता : उस आनंद को कौन भोगता है? रिलेटिव भोगता है या रियल भोगता है?

दादाश्री : नहीं, नहीं। रिलेटिव ही भोगता है न! रियल तो आनंद में ही है ना! जिसे कमी थी, वह भोगता है और आप खुद ही कहते हो न कि पहले आप ऐसे थे। अब आपका अहंकार भोग रहा है और आप अब शुद्धात्मा हो गए हैं अर्थात् प्रज्ञा स्वरूप में आ गए हो। अहंकार भोग रहा है इसलिए उसे जो विषाद होता था, उसे

जो कमी थी, वह सारी इस आनंद को भोगने से निकल जाती है। प्लस-माइनस हो जाता है।

दोनों अलग हैं, वेदक और ज्ञायक

प्रश्नकर्ता : वेदनीय कर्म के उदय के समय जो वेदना का वेदन करता है, वह कौन है और उस समय कौन जानता है कि वेदना हो रही है?

दादाश्री : वेदन करता है अहंकार और प्रज्ञा जानती है। प्रज्ञा जो है वह वेदक को भी जानती है और यह जो वेदक है, वह वेदना का वेदन करता (भुगतता) है। वेदक अर्थात् अहंकार। अहंकार में सभी कुछ आ गया।

अहंकार मानता है कि यह दु:ख मुझे ही हो रहा है, इसीलिए वह वेदता है। इसी वजह से उसे वेदक कहा जाता है और प्रज्ञाशक्ति इसे जानती है। अब अपने काफी कुछ महात्माओं में प्रज्ञाशक्ति (एक तरफ) रह जाती है और वे वेदक भाव में आ जाते हैं। उससे दु:ख बढ़ जाता है, बाकी उन्हें अन्य कोई नुकसान नहीं होता। यदि खुद तन्मयाकार हो जाए तो दु:ख बढ़ जाता है।

मैं यहाँ पर सभी बच्चों को प्रसाद देता हूँ। अगर प्रेम से प्रसाद दें तो उन्हें दु:ख नहीं होता लेकिन अगर ज़रा सा भी मुँह बिगाड़कर दिया जाए तो उन पर असर हो जाता है। उसका कारण यह है कि उसमें अहंकार मिश्रित है। जबकि प्रेम में खाने वाले में भी अहंकार एकाकार नहीं है और देने वाले में भी अहंकार एकाकार नहीं है। अहंकार का अस्तित्व ही नहीं है वहाँ पर, इसलिए अच्छा लगता है।

अत: यदि इसमें हम वेदक में एकाकार हो जाएँ तो बहुत दु:ख होगा लेकिन यदि ज्ञायक रहा जाए तो दु:ख बिल्कुल कम हो जाएगा। अगर 'जानने' में रहे तो ऐसा रहेगा जैसा कि प्रेम से देने पर महसूस होता है न!

प्रज्ञा परिषह

प्रश्नकर्ता : ज्ञान का अंश प्राप्त होने पर क्या वाणी का उदय होता है?

दादाश्री : हाँ, होती है। वाणी का उदय जागृत होता है और उस उदय के जागृत होने के बाद यदि उसे बोलने नहीं दिया जाए तब प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होता है। उसका समभाव से वेदन करना पड़ेगा। वाणी का उदय अपने आप ही होता है। उसके बाद फिर ज्ञानवाणी निकलेगी। वाणी ऐसी निकलेगी कि सामने वाले को समझा सकेंगे। लेकिन आपके समझाने पर भी यदि वह नहीं सुने तो आपको प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होगा।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा भी हो सकता है कि इच्छा तो होगी बोलने की, किसी को समझाने की, लेकिन मैं वाणी द्वारा प्रकट न कर पाऊँ?

दादाश्री : हाँ, हो सकता है। वाणी द्वारा प्रकट होना तो बहुत बड़ी चीज़ है। वह तो जब बहुत दिनों तक आप सुनते रहोगे, तब जाकर वह श्रुतज्ञान प्रगमित होगा और फिर वह मतिज्ञान में रूपांतरित होगा। फिर वह वाणी के रूप में निकलेगा। अत: बहुत दिनों तक सुनते रहना है फिर अंदर उसका दही जमता रहेगा। उसके बाद मक्खन निकलेगा, फिर उससे घी बनेगा। विस्तार से समझें तो ऐसा है यह सब।

और अगर किसी की भूल हो, वह भी कहना हो, खुद का ज्ञान बताना हो और अगर कहने का अवसर नहीं मिले, तब भी अंदर परिषह उत्पन्न होता है। 'कब बोलूँ', 'कब कह दूँ' 'कब कह दूँ' वह है प्रज्ञा परिषह।

भगवान ने जो परिषह बताए हैं, उनमें प्रज्ञा को भी परिषह कहा है। क्रमिक मार्ग में प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होने के बाद समकित होता है। वास्तविक समकित उसके बाद ही होता है। अपने यहाँ पर ज्ञान मिलने के बाद यह सब निकलता ही रहता है, खिचड़ी पकती ही रहती है।

यदि आप उपाश्रय में जाकर बात करने लगोगे तो कोई आपकी सुनेगा नहीं ना? आप बिल्कुल सही बात कहने जाओगे तो भी नहीं

सुनेंगे इसीलिए तो आपको प्रज्ञा परिषह उत्पन्न होता है। मैं अपनी सही बात कह रहा हूँ लेकिन सुनते ही नहीं। ऐसी बैचेनी होती है, उसे परिषह कहा गया है। उस परिषह का समभाव से *निकाल* करने के बाद प्रज्ञा और ज़्यादा मज़बूत हो जाती है।

श्रद्धा व प्रज्ञा की सूक्ष्म समझ

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा, प्रज्ञा, दृष्टा और चेतन, इनके बारे में कुछ बताइए।

दादाश्री : दृष्टा और चेतन एक ही हैं। श्रद्धा दो प्रकार की होती हैं। संसार व्यवहार में जो श्रद्धा रखी जाती है, वह सब मिथ्यात्व श्रद्धा है और अगर इस तरफ आ जाए, तो वह सम्यक्त्व श्रद्धा है, जिसे प्रतीति कहा जाता है। वह चेतन का भाग है और प्रज्ञा भी चेतन का भाग है। लेकिन प्रज्ञा अलग है। श्रद्धा, वह प्रतीति वाला भाग है और फिर वापस (आत्मा के साथ) एक हो जाती है। तब तक यह श्रद्धा व प्रतीति तो हमेशा अलग ही रहेंगे। गुणों को लेकर दोनों अलग ही हैं लेकिन स्वभाव से एक हैं।

प्रश्नकर्ता : इसके लिए तीन अंग्रेज़ी शब्दों का उपयोग किया गया है। फेथ (faith)-श्रद्धा, रीज़न (reason)-प्रज्ञा और कॉन्शियसनेस (consciousness) चेतन है।

दादाश्री : ऐसा है न, अर्थ तो किसे कहते हैं? जो समतोल हो, उसे अर्थ कहते हैं। यदि दस रतल इस तरफ है तो उस तरफ भी दस रतल होना चाहिए। जबकि इस तरफ श्रद्धा, प्रज्ञा और चेतन दस रतल है तो उस तरफ डेढ़ रतल हैं, तीनों ही (faith, reason, consciousness)।

प्रश्नकर्ता : तो इम्बेलेन्स (असंतुलन) हो गया।

दादाश्री : अर्थात् डेढ़ रतल मतलब वह स्थूल वस्तु है जबकि यह दस रतल यथार्थ वस्तु है। अर्थात् यह डेढ़ रतल है और वह दस रतल।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपने क्या कहा था? जो चेतन है, उसी के दो भाग हैं-श्रद्धा और प्रज्ञा।

दादाश्री : नहीं, श्रद्धा तो उसका मूल स्वभाव ही है। जब वह प्रतीति में आता है तब श्रद्धा के रूप में होता है और तब प्रज्ञा अलग हो जाती है और प्रज्ञा खुद का कार्य पूरा करने के बाद एकाकार हो जाती है। प्रज्ञा, अज्ञा का नाश करने के लिए है। प्रज्ञा में अज्ञा का नाश करने का गुण है लेकिन अलग होकर अज्ञा का नाश करने के बाद वह तुरंत आत्मा में मिल जाती है। अत: प्रज्ञा तो खुद ही आत्मा है लेकिन क्योंकि वह अलग हो जाती है इसलिए उसे प्रज्ञा कहा गया है।

प्रश्नकर्ता : तो इसमें बेस है श्रद्धा। जिसे आप प्रतीति कहते हैं, वह।

दादाश्री : हाँ, प्रतीति बेस है। इसका मतलब उसे इस जगत् की उल्टी प्रतीति बैठी है या सीधी, उस अनुसार यह चलेगा। उल्टी प्रतीति इस संसार में भटकाती ही रहती है। यदि प्रतीति सीधी हो जाए तो मोक्ष में ले जाएगी। प्रतीति बैठाने वाले निमित्त की ज़रूरत है।

संबंध सूझ और प्रज्ञा के बीच

प्रश्नकर्ता : तो यह जो कुदरती सूझ है उसका प्रज्ञा से क्या संबंध है?

दादाश्री : यह जो सूझ है, वही प्रज्ञा की ओर ले जाती है। हाँ, वह सूझ ही काम करती है। अगर इसमें कुदरती रूप से कोई काम करता है तो वह सिर्फ सूझ है। अज्ञान दशा में सूझ ही काम करती है।

प्रश्नकर्ता : वह प्रज्ञा का भाग नहीं है?

दादाश्री : नहीं! सूझ अर्थात् जहाँ आवरण खुल गए हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या वह प्रज्ञा की तरफ ले जाती है?

दादाश्री : उसी तरफ, परमानेन्ट की तरफ ले जाती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह जो भाव है, वह भाव कहाँ आएगा इसमें?

दादाश्री : वह जो भाव करता है, वह सूझ (समझ) में से ही आता है। अहंकार अलग चीज़ है लेकिन जो समझ है, वह समझ बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते प्रज्ञा तक पहुँच जाती है। और जब प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है तब वह आत्मा में ही मिल जाती है। लेकिन सूझ, समझ का भाग है तो वह उस समझ के अनुसार, ज्ञान के अनुसार भाव करता है।

वह है दर्शन, सूझ नहीं है

प्रश्नकर्ता : सूझ को प्रज्ञा कह सकते हैं?

दादाश्री : नहीं! प्रज्ञा ज्ञान है जबकि यह सूझ तो दर्शन है। अज्ञा को बुद्धि कहा जाता है। हमें तो दिखाई देता है, आगे-पीछे का सभी! पीछे क्या हो रहा है, वह भी दिखाई देता है। अगर कोई कहे, 'मैं पीछे खड़ा हूँ, मैंने हाथ ऊँचा किया या नहीं?' वैसा नहीं दिखाई देता। स्थूल नहीं दिखाई देता। सूक्ष्म दिखाई देता है। जो सूक्ष्म विभाग है न वह सारा दिखाई देता है। समझ की वजह से वह दिखाई देता है यह स्थूल तो, जब संपूर्ण केवलज्ञान हो जाता है, तब दिखाई देता है।

मैंने तो देखा है न छत से लेकर तले तक सारा। नीचे भी देखा है कि नीचे कैसा है? ऊपर कैसा है? परस्पेक्टिव (परिप्रेक्ष्य) कैसा है, सभी तरफ से देख लिया इसलिए पता चल गया कि यह बात तो ऐसी है। परस्पेक्टिव व्यू बहुत कम लोग देख सकते हैं। यों सामने खड़े रहना और परस्पेक्टिव व्यू देखना, दोनों एक साथ नहीं हो सकता। हमें वह आता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, उसे सूझ कहते हैं?

दादाश्री : नहीं! वह दर्शन है। सूझ तो हर एक व्यक्ति में

होती है। सूझ तो हर एक में अपनी शक्ति के अनुसार होती है। दर्शन फैला हुआ है न! जिसका विस्तार हुआ है, वह है दर्शन! उसकी तो बात ही अलग है न! इतने कड़वे अनुभवों के बीच भी वह आनंद में रखता है। उसकी तो बात ही अलग है न!

प्रश्नकर्ता : टेपरिकॉर्डर बोलता है और 'मैं सुनता हूँ। फिर यह टेपरिकॉर्डर है और मैं इसे देख रहा हूँ', वह देखने वाला भाग प्रज्ञा है?

दादाश्री : वह भाग प्रज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : इसीलिए आप कहते हैं न कि 'देखकर बोलता हूँ।'

दादाश्री : देखकर बोलता हूँ। पहले जो अज्ञा स्थिति थी, वह अब प्रज्ञा स्थिति हो गई है। इस अक्रम विज्ञान को किससे देखा है? प्रज्ञाशक्ति से। संसार में तो बुद्धि से देखा हुआ ज्ञान काम का है लेकिन अपने यहाँ पर तो निर्मल ज्ञान की आवश्यकता है।

क्या अज्ञा ही अज्ञान है?

प्रश्नकर्ता : 'अज्ञा अर्थात् अज्ञान', क्या ऐसा नहीं है? हम इसका अर्थ अज्ञान समझते हैं लेकिन अज्ञा कौन है? यानी कि अज्ञा की शुरुआत कहाँ से हुई? ठेठ प्रज्ञा की शुरुआत तक की बाउन्ड्री बुद्धि की है। वह सारी अज्ञा ही मानी जाती है। तो अज्ञा बुद्धि से नीचेवाला स्थर है या बुद्धि का समतुल्य स्थर है?

दादाश्री : अज्ञा तो... बुद्धि की शुरुआत हुई, तभी से उसे अज्ञा कहा जाता है। जैसे-जैसे वह बुद्धि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे अज्ञा बढ़ती जाती है।

प्रश्नकर्ता : यह जो अज्ञान है, वह बुद्धि से भी निम्न स्टेज है?

दादाश्री : अज्ञान अलग चीज़ है और अज्ञा अलग है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, मुझे वही समझना है। अज्ञान और अज्ञा इन दोनों के बीच का फर्क समझना है।

दादाश्री : अज्ञान तो एक प्रकार का ज्ञान है और अज्ञा किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं है। सिर्फ बुद्धि! यानी कि एक ने कहा कि यह सही है तो दूसरा भी कहता है यह सही है। मैच नहीं होने देता। उनकी खुद की दृष्टि से प्रॉफिट और लॉस है। दोनों की दृष्टि अलग रहती है प्रॉफिट में, हर एक चीज़ में। अज्ञा हमेशा प्रॉफिट और लॉस ही देखती है। यही उसका काम है जबकि अज्ञान ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : 'अज्ञान में एक प्रकार का ज्ञान है', यह समझाइए।

दादाश्री : अज्ञान अर्थात् पूरे सांसारिक ज्ञान को जानना। वह अज्ञान कहलाता है। जबकि भीतर आत्मा के बारे में जानना, उसे ज्ञान कहते हैं। अज्ञान को प्राप्त करने के लिए अज्ञा उत्पन्न हुई है और ज्ञान को प्राप्त करने के लिए प्रज्ञा उत्पन्न हुई।

प्रश्नकर्ता : हाँ, अज्ञान अर्थात् सही-गलत लेकिन वह ज्ञान तो है न?

दादाश्री : नहीं। अज्ञान अर्थात् एक प्रकार का ज्ञान, लेकिन वह विशेष ज्ञान है। गलत नहीं है। वह आत्मा का विशेष ज्ञान है। आत्मा का जो ज्ञान है, यह उससे आगे का विशेष ज्ञान है। विशेष ज्ञान है लेकिन दु:खदाई है, उसके जैसा सुखदायी नहीं है इसीलिए उसे अज्ञान कहा गया है।

विशेष अर्थात् आत्मा का विशेष ज्ञान उत्पन्न होता है लेकिन वह रिलेटिव होने की वजह से विनाशी है इसलिए वह हमारे लिए काम का नहीं है। हम तो मूल अविनाशी सुख के भोक्ता हैं। सनातन सुख के भोक्ता हैं हम। जो सनातन को एक ओर रखकर इस तरह भटकेगा तो कल उसका ठिकाना नहीं रहेगा। आज मनुष्य योनि में है लेकिन फिर कल चार पैर वाला बनकर वापस आड़ा हो जाता है! इसे क्या आबरू कहेंगे? लेकिन इतना अच्छा है कि पता नहीं चलता। अगर पता चलने लगे तो यहाँ पर रौब मारना बंद हो जाएगा, एकदम ढीला पड़ जाएगा।

प्रज्ञा न तो रियल है, न ही रिलेटिव

प्रश्नकर्ता : रियल और रिलेटिव को अलग कौन रखता है?

दादाश्री : विनाशी को तो हम पहचान सकते हैं न! मन-वचन-काया से, यह सब जो आँखों से दिखाई देता है, कानों से सुनाई देता है, वह सब रिलेटिव ही है। जबकि रियल का अर्थ है अविनाशी। अंदर प्रज्ञाशक्ति है। वह दोनों को अलग रखती है। रिलेटिव का भी अलग रखती है और रियल का भी अलग रखती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर दादा ऐसा हुआ न कि रियल, रिलेटिव और प्रज्ञा, ये तीन चीज़ें हैं? प्रज्ञा रियल से अलग चीज़ है?

दादाश्री : प्रज्ञा रियल की ही शक्ति है लेकिन बाहर निकली हुई शक्ति है। जब रिलेटिव नहीं रहता, तब वह आत्मा में एकाकार हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा रिलेटिव है या रियल है?

दादाश्री : 'रिलेटिव रियल' है। जब उसका काम पूरा हो जाता है तो मूल जगह पर बैठ जाती है, वापस आत्मा में एकाकार हो जाती है। प्रज्ञा 'रिलेटिव रियल' है। रियल होती तो अविनाशी कहलाती।

प्रश्नकर्ता : वह 'रिलेटिव-रियल' जब 'रियल' बन जाती है, तब रिलेटिव नहीं बचता न?

दादाश्री : रियल में रिलेटिव नहीं हो सकता। रिलेटिव मात्र विनाशी है। अत: यह प्रज्ञा विनाशी है लेकिन रियल है इसलिए वापस खुद के स्वभाव में आ जाती है। उसका संपूर्ण नाश नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : रिलेटिव भाग पर प्रज्ञा का कंट्रोल है?

दादाश्री : किसी का भी कंट्रोल नहीं है। बल्कि रिलेटिव का रियल पर कंट्रोल था इसलिए शोर मचाते थे कि, 'हम बंधे हुए हैं, हम बंधे हुए हैं, हमें मुक्त करो, मुक्त करो'। जब ज्ञानीपुरुष मुक्त कर देते हैं, तब चैन की साँस लेता है कि, 'ओह! अब मुक्त हो गए।'

भेद, भेदज्ञान और प्रज्ञा में

प्रश्नकर्ता : जो बार-बार अंदर भेद डालता रहता है, उस भेदज्ञान और प्रज्ञा के बीच क्या संबंध है?

दादाश्री : ज्ञानीपुरुष भेद रेखा डाल देते हैं। फिर उसके बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है। तब तक प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होती। जब तक भेद रेखा न डालें, तब तक अज्ञा तो है ही।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा और भेदज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : भेदज्ञान हो जाने के बाद ही प्रज्ञा उत्पन्न होती है। प्रज्ञा लाइट है और यह भेदज्ञान भी लाइट है। वह लाइट तो सिर्फ दोनों को अलग रखने के लिए ही है।

प्रश्नकर्ता : और प्रज्ञा की परमानेन्ट लाइट?

दादाश्री : प्रज्ञा की लाइट टेम्परेरी-परमानेन्ट है। वह अपने आप ही फुल लाइट देती है चारों ओर से, मोक्ष में ले जाने तक। अगर उत्पन्न हो गई तो छोड़ेगी नहीं।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा का ज़ोर लाना हो तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : इन पाँच आज्ञाओं का पालन करने से प्रज्ञा हाज़िर हो जाती है। अन्य कुछ नहीं। आपको आज्ञा में रहने का जो आकर्षण रहता है, तब आप पूछते हो कि ऐसा किस वजह से होता है? वह प्रज्ञा करती है। जो प्रकाश देती है, उसका नाम प्रज्ञा रखा गया है।

'ऐसा' करने से बुद्धि मर जाएगी

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ, यह देह नहीं हूँ' वह भी बुद्धि ही कहती है न?

दादाश्री : इसमें वह बुद्धि नहीं कहती है। बुद्धि ऐसा कहने ही नहीं देगी कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। अगर बुद्धि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' कहने दे तो उसका खुद का नाश हो जाएगा। उसका खुद का अस्तित्व खत्म

हो जाएगा। अत: वह खुद इस पक्ष में बैठती ही नहीं है कभी भी। अगर वह 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलेगी तो मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार का संपूर्ण अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा इसलिए मन भी ऐसा कुछ एक्सेप्ट नहीं करता। (ज्ञान मिलने के बाद)। सभी समझते तो हैं लेकिन जब डिस्चार्ज का फोर्स आता है, तब वह एक्सेप्ट नहीं करता। बुद्धि तो हमेशा संसार के पक्ष में ही रहती है, कभी भी शुद्धात्मा के पक्ष में नहीं रहती। विरोधी पक्ष में रहती है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठित आत्मा कहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'?

दादाश्री : वह नहीं कहता। आत्मा में से प्रज्ञा अलग हुई है, वह कहती है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और वह प्रतिष्ठित आत्मा को देखती है कि यह लट्टू क्या कर रहा है! शुद्धात्मा में रहकर देखती है वह।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा देखती है?

दादाश्री : सारा काम अभी प्रज्ञा ही कर लेगी। जब तक मोक्ष में न चले जाएँ, जब तक यह सामान है, तब तक प्रज्ञा है। इस सामान के खत्म होते ही प्रज्ञा अंदर शुद्धात्मा में एकाकार हो ही जाएगी।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसा कहते हैं कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो उसे भी प्रज्ञा ही देखती है?

दादाश्री : बोलता है टेपरिकॉर्डर लेकिन भाव प्रज्ञा का है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या वह प्रज्ञा की सहज क्रिया है?

दादाश्री : प्रज्ञा की सभी क्रियाएँ सहज ही होती हैं, स्वभाविक।

शुद्धात्मा, प्रतिष्ठित आत्मा और प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा और प्रतिष्ठित आत्मा के बीच संबंध प्रज्ञा के माध्यम से है न?

दादाश्री : दोनों का संबंध? हमें प्रज्ञा से संबंध है। (जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया है) उन लोगों में प्रज्ञा है ही नहीं। उनमें अज्ञा के माध्यम से संबंध है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के साथ अज्ञान का संबंध है क्या?

दादाश्री : आत्मा को अज्ञान स्पर्श कर ही नहीं सकता न! प्रकाश को अंधेरा छू कैसे पाएगा? वह तो आधार रहित है जबकि यह (आत्मा) तो खुद के आधार पर खड़ा है।

प्रश्नकर्ता : खुद के अर्थात् क्या?

दादाश्री : अर्थात् खुद के गुणधर्मों के आधार पर। *पुद्गल* खुद के गुणधर्मों के आधार पर। प्रतिष्ठित आत्मा यानी पावर। पावर वाला खत्म हो जाएगा जबकि मूल 'वस्तु' को कुछ भी नहीं होता। बस, इसके अलावा कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह प्रतिष्ठित आत्मा मूल वस्तु में से उत्पन्न हुआ है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन ऐसा संयोगवश हुआ।

प्रश्नकर्ता : जो प्रकृति को जानता है और प्रकृति के आधार पर चलता है, वह कौन है?

दादाश्री : वह अहंकार है, बस। प्रकृति को जानता है। जब उस पर सोचने बैठता है तब सभी कुछ जानता है।

किस वजह से ये सारे दोष हुए, वह यह सबकुछ जानता है। कुछ ही भाग नहीं जानता, बाकी सबकुछ जानता है। निन्यानवे तक जान सकता है, सौ तक नहीं जान सकता। बुद्धि का बहुत ज़्यादा विकास करे तो निन्यानवे तक जान सकता है लेकिन इसके बावजूद भी उस अहंकार से काम नहीं हो सकता। शुद्ध की ही आवश्यकता है।

प्रश्नकर्ता : जो खुद को जानता है और खुद के आधार पर चलता है, वह कौन है?

दादाश्री : वह अपनी प्रज्ञाशक्ति है। वह खुद अपने प्रकाश से ही जान रही है। चलना अर्थात् भाषा में जिसे चलना कहते हैं, वह नहीं। वह व्याप्त होती है!

ज्ञायकता किसकी?

प्रश्नकर्ता : आत्मा के स्वरूप में तो सभी चीज़ें झलकती हैं न? आत्मा का जो स्वरूप है दर्पण जैसा, दर्पण कभी भी देखने के लिए बाहर नहीं आता लेकिन यों दर्पण में सभी दृश्य झलकते हैं।

दादाश्री : वह जो झलकता है, वह अलग चीज़ है लेकिन यह तो ज्ञायक है! तो अभी यह ज्ञायकता किसकी है? वह प्रज्ञाशक्ति की है। हाँ, क्योंकि अभी प्रज्ञाशक्ति कार्यकारी है। मूल आत्मा कार्यकारी नहीं होता है। जब तक यह संसार है, तब तक के लिए कार्यकारी शक्ति उत्पन्न हुई है। वह है प्रज्ञा। वह प्रज्ञा सभी कार्य पूरे करके, सब समेटकर मोक्ष में चली जाती है।

जुगल जोड़ी, जागृति और प्रज्ञा की

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञाशक्ति और जागृति में कोई अंतर है?

दादाश्री : प्रज्ञाशक्ति, आत्मा की प्योर शक्ति है और जागृति अर्थात् जिसमें प्योरिटी और इम्प्योरिटी दोनों ही होती हैं। जागृति प्योर होते-होते जब फुल हो जाती है, तब उसे केवलज्ञान कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : अब मोक्ष में जाने के बाद क्या प्रज्ञाशक्ति खत्म हो जाएगी?

दादाश्री : उसके बाद प्रज्ञाशक्ति खत्म हो जाती है। प्रज्ञाशक्ति हमें मोक्ष में ले जाने तक हेल्प करती है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में पहुँच जाने के बाद जागृति कोई काम करती है क्या? जागृति मंद हो जाती है?

दादाश्री : नहीं-नहीं! कुछ भी नहीं। अलग हो जाती है। वहाँ जागृति है ही नहीं। वहाँ पर तो फिर सिर्फ खुद प्रकाश ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मोक्ष में पहुँचने तक जागृति की ज़रूरत है या प्रज्ञाशक्ति की?

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञाशक्ति और जागृति दोनों साथ में चलते हैं। प्रज्ञाशक्ति उसे वापस लाने की कोशिश करती है और जागृति उसे पकड़ लेती है।

अज्ञाशक्ति की जड़

प्रश्नकर्ता : अज्ञाशक्ति मूल आत्मा की कल्पशक्ति में से उत्पन्न होती है। क्या वह कल्पशक्ति आत्मा का स्वभाव है?

दादाश्री : नहीं, अज्ञाशक्ति साइन्टिफिकली उत्पन्न होती है। इसमें छः तत्त्व कार्य करते रहते हैं, निरंतर! इसमें जब चेतन और *पुद्गल* दोनों मिलते हैं, तब अज्ञाशक्ति बन जाती है और जब हम दोनों को अलग कर देते हैं तो चले जाते हैं, अहंकार और ममता दोनों ही।

जिस तरह पर (पराए) संयोगों के दबाव से अज्ञान होते-होते, अज्ञान पद उत्पन्न हो गया था, उसी तरह अन्य दबाव से (ज्ञानीपुरुष के निमित्त से) ज्ञान पद उत्पन्न हो गया।

वह नहीं है प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : जितना स्वभाव उत्पन्न होता है, क्या उस विभाग को हम प्रज्ञा कहते हैं?

दादाश्री : वह प्रज्ञा विभाग नहीं है। स्वभाव भाव उत्पन्न होने पर जो उसे भी जानती है, वह प्रज्ञा है। 'कितना विशेष भाव कम हुआ और कितना स्वभाव भाव उत्पन्न हुआ या बढ़ा', उन सभी को जो जानती है, वह प्रज्ञा है और उस समय जो यह सब जानती है कि आत्मा क्या है, वह प्रज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा भी यों बढ़ती-घटती है न?

दादाश्री : बढ़ती-घटती है न, प्रज्ञा भी कम-ज़्यादा होती है। गुरु-लघु हो जाती है क्योंकि अंत में जब स्वभाव भाव पूर्ण हो जाता है और अहम् भाव खत्म हो जाता है, तब प्रज्ञा खुद ही खत्म हो जाती है। तब तक यह प्रज्ञा काम करती है।

दादा की खटपट वाली प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : दादा में प्रज्ञा है? दादा में? आपके बारे में?

दादाश्री : सभी में! प्रज्ञा रहित तो हो ही नहीं सकते न!

प्रश्नकर्ता : दादा जो सत्संग करते हैं, वह सारा जो व्यवहार चलता है, वह प्रज्ञा से है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रज्ञा तो हमारे लिए है, आपके लिए तो नहीं है न?

दादाश्री : है न! मुझ में भी प्रज्ञा है न! प्रज्ञा कब बंद होती है? जब केवलज्ञान हो जाता है तब वह खुद ही आत्मा में विलीन हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : वह एकरूप हो जाती है।

दादाश्री : एकरूप हो जाती है। तब तक अलग ही रहती है, वर्ना मुझ से खटपट कैसे हो पाती? यों 'आओ, आपको ज्ञान देंगे', क्या यह सब खटपट नहीं कहलाएगी? वह खटपट प्रज्ञा की वजह से है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा खटपट करवाती है।

दादाश्री : हाँ, और जिनमें प्रज्ञा नहीं है, वे खटपट नहीं करते। आप दर्शन करने जाओ और उन्हें दिखाई दे कि आपका अहित होनेवाला है, तब भी कुछ नहीं कहेंगे। इमोशनल नहीं होंगे उस समय। क्योंकि हम में बुद्धि नहीं है। हमें बुद्धि इमोशनल नहीं करवाती, यह खटपट प्रज्ञा करवाती है। आपके हिताहित की बात करते हैं इसलिए हम खटपटिया कहलाते हैं। हमारी खटपट कैसी है कि 'जो सुख मुझे मिला वह सभी को प्राप्त हो', यह है हमारी खटपट। और यदि आप उसकी प्राप्ति के लिए नहीं आते हो तो हम आपसे कहते हैं कि 'भाई कल क्यों नहीं आए थे?' कोई पूछे कि इसमें आपकी क्या गर्ज़ है? तब कहते हैं, 'यह हमारी खटपट है, गर्ज़ नहीं है।' लोग मुझ से कहते

हैं, 'दादा यह खटपट शब्द निकाल दीजिए न! खराब लगता है।' मैंने कहा, 'नहीं-नहीं! यही अच्छा लगता है। यही अच्छा है।' देखना तो सही, इसकी कैसी कद्र होगी एक दिन। खटपट शब्द की कद्र होगी एक दिन। पूरा ही 'खटपट' शब्द, जिसके प्रति लोगों को घृणा हो गई है, उसी खटपट शब्द से उन्हें आनंद हो जाएगा। खटपट ऐसी भी होती है, वैसी भी होती है और ऐसी भी होती है।

कृपा का रहस्य

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान की कृपा और ज्ञानीपुरुष की कृपा, क्या दोनों अलग हैं? इनमें क्या अंतर है?

दादाश्री : दादा भगवान की कृपा, मैं जान जाता हूँ कि इस पर अच्छी है और ज्ञानी को कृपा या अकृपा से कोई लेना-देना ही नहीं है न! ऐसा कुछ खास लेना-देना नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को कृपा से क्यों लेना-देना नहीं है?

दादाश्री : नहीं, लेकिन दादा भगवान की कृपा उतरने के बाद फिर ज्ञानी को और कोई झंझट नहीं रही न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यों कहा तो ऐसा जाता है न कि ज्ञानीपुरुष का *राजीपा,* ज्ञानीपुरुष की कृपा।

दादाश्री : वह तो व्यवहार में कहने की बात है। वही भगवान है और वही सबकुछ है। यह तो हम इनका विभाजन करते हैं। बाकी, अन्य सभी जगह पर तो विभाजन होता ही नहीं है न! हम इसीलिए इसका विभाजन करते हैं ताकि लोगों को करेक्ट लगे कि यह साफ-साफ बात है! और हमें कोई ऐसा शौक नहीं है भगवान बन बैठने का।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा भगवान खुद अंदर वीतराग हैं न?

दादाश्री : हाँ, वीतराग।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उन्हें ऐसा क्यों है कि कम या ज़्यादा कृपा उतारनी है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। उनके (भगवान के) अलावा, हम जो ज्ञानी हैं, उन्हें ऐसा नहीं है कि 'ये सब हमें भगवान कहकर बुलाएँ तो अच्छा।' उस स्वाद और उस मिठास की कोई ज़रूरत नहीं है। वह सारी भूख मिट चुकी है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, वह तो ठीक है लेकिन ये अपने दादा भगवान....

दादाश्री : वे तो संपूर्ण वीतराग ही हैं।

प्रश्नकर्ता : जो कृपा उतरती है, वह ऑटोमैटिक है न? वह स्वयं (अपने आप ही होती) है न? या फिर दादा भगवान की कृपा है?

दादाश्री : दादा भगवान, वे तो वीतराग प्रभु हैं लेकिन यह जो प्रज्ञा है न, इस प्रज्ञा द्वारा सारी कृपा मिलती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब, ज्ञानीपुरुष में तो आत्मा खुद ही है, फिर प्रज्ञा कहाँ से आई?

दादाश्री : नहीं! वह कृपा प्रज्ञा के माध्यम से मिलती है। प्रज्ञा तो सभी जगह रहेगी। प्रज्ञा तो, जब तक मोक्ष में न पहुँच जाएँ, तब तक बाहर रहकर काम करती रहेगी।

प्रश्नकर्ता : यानी उस प्रज्ञा से हम पर कृपा उतरती है।

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञा से कृपा उतरती है। तब हमें पता चल जाता है कि कृपा उतरती है इस व्यक्ति को।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या फिर प्रज्ञा को वीतरागता में परेशानी नहीं आती?

दादाश्री : प्रज्ञा वीतराग है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा वीतराग नहीं है?

दादाश्री : हो ही नहीं सकती न! प्रज्ञा तो इन सब का *निकाल* करने की ही झंझट लेकर आई है। जैसे-तैसे करके, सब समेटकर उसे मोक्ष में ले जाना है। यही उसका काम है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपकी प्रज्ञा तो बहुत बड़ी है।

दादाश्री : वह तो खूब डेवेलप्ड है लेकिन काम तो उसका भी यही है। हम ऐसा कहते भी हैं कि 'देखो भाई, भगवान की कृपा कम हो गई है तुम पर।'

प्रश्नकर्ता : अर्थात् वह प्रज्ञा की ही बात है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन ऐसा भी कहते हैं कि कृपा कुछ कारणों की वजह से कम हो गई है। उन कारणों को बदल दो तो वापस मिलेगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे सारी बातें प्रज्ञा की हैं?

दादाश्री : दादा भगवान तो वीतराग ही हैं न! वीतराग को तो ऐसा कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या प्रज्ञा केवलज्ञान होने तक रहती है?

दादाश्री : तब तक, ठेठ तक प्रज्ञा है। केवलज्ञान होने के बाद नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान होने के बाद में तीर्थंकर बनते हैं अथवा केवली बनते हैं तो फिर उनकी कृपा का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि प्रज्ञा नहीं है।

दादाश्री : पूर्ण हो जाता है न! सबकुछ खत्म हो जाता है। जब तक प्रज्ञा है तब तक देह के साथ कुछ लेना-देना है, उसके बाद तो देह से बिल्कुल अलग! हमें केवलज्ञान नहीं हुआ है। हाँ, फिर भी हमने यह देखा है कि केवलज्ञान क्या है।

जगत् कल्याण में अहंकार निमित्त है और प्रज्ञा करवाती है

प्रश्नकर्ता : हमें निमित्त बनाकर जगत् कल्याण का काम कौन करवाता है?

दादाश्री : वह सब प्रज्ञाशक्ति का काम है। प्रज्ञाशक्ति सब

करवाती है। इसमें आत्मा कुछ नहीं करवाता। आत्मा में करवाने की कोई शक्ति है ही नहीं। इगोइज़म निमित्त है।

प्रश्नकर्ता : निमित्त है इगोइज़म। 'मैं कर रहा हूँ', वह निमित्त है?

दादाश्री : हाँ, कौन करवाता है? प्रज्ञाशक्ति। सबकुछ प्रज्ञाशक्ति का ही काम-काज है।

प्रश्नकर्ता : अब यह सब जो दिखाई देता है, वह आत्मा में दिखाई देता है लेकिन देखने वाला तो उससे परे है न?

दादाश्री : आत्मा में सब प्रतीत होता है। अलग है, ऐसा दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन जो उसका वर्णन करता है, वह देखने वाला तो उससे परे ही है न?

दादाश्री : वर्णन करना, वह सारा प्रज्ञा का काम है। अज्ञाशक्ति जो वर्णन करती थी, वह बुद्धि बल से करती थी और प्रज्ञाशक्ति ज्ञान बल से करती है, स्वाभाविक बल से।

प्रश्नकर्ता : अज्ञा परिग्रह सहित बात करती है और प्रज्ञा परिग्रह के बिना बात करती है।

दादाश्री : नाम मात्र को भी परिग्रह नहीं। नो परिग्रह!

तब तक प्रज्ञा ही ज्ञाता-दृष्टा

प्रश्नकर्ता : हम यह जो ज्ञाता-दृष्टा भाव में रहते हैं, तो उस ज्ञाता-दृष्टा भाव में प्रज्ञा रहती है या आत्मा?

दादाश्री : नहीं, अभी प्रज्ञा ही ज्ञाता-दृष्टा है। प्रज्ञा आत्मा का ही भाग है। अभी सारा काम प्रज्ञा कर रही है। वह प्रज्ञा जब आत्मा में एकाकार हो जाती है तब केवलज्ञान होता है और केवलज्ञान होने के कुछ समय बाद मोक्ष में चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : अभी आपका, ज्ञानीपुरुष का आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा

है। हम में प्रज्ञा ज्ञाता-दृष्टा है।

दादाश्री : मुझ में भी प्रज्ञा है। जब तक केवलज्ञान नहीं हो जाता, तब तक प्रज्ञा है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा सभी कुछ जानता है, देखता है। क्या आत्मा ही जानता और देखता है?

दादाश्री : वही, लेकिन वह प्रज्ञा नामक भाग है।

प्रश्नकर्ता : तो इस ज्ञान प्राप्ति के बाद जो खुद की प्रकृति को देखता है, वह खुद कौन है?

दादाश्री : वही, आत्मा ही देखता है। और कौन? सबकुछ आत्मा के ही सिर पर। आत्मा अर्थात् फिर वही, प्रज्ञा। यहाँ पर फिर इसे सीधा आत्मा नहीं मानना है। आत्मा अर्थात् प्रज्ञा ही सारा... यह सारा कार्य करती है लेकिन हम उसे आत्मा कहते हैं। बस इतना ही है कि कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं तो पहले ऐसा समझा था कि हम महात्माओं में ज्ञान लेने के बाद प्रज्ञा ही जागृति को सही रखती है। कोई भी दोष होने पर तुरंत टोकती है कि, 'इतने, ये-ये दोष हुए हैं।'

दादाश्री : हाँ, सचेत करती है, सचेत करती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यही ज्ञाता-दृष्टा रहती है, वह ठीक से समझ में नहीं आया था।

दादाश्री : नहीं! सब जगह प्रज्ञा ही ज्ञाता-दृष्टा है। आत्मा सिर्फ केवलज्ञान को ही देख सकता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जब केवलज्ञान होता है तभी आत्मा ज्ञाता-दृष्टा बनता है, तब तक प्रज्ञा ही काम करती है।

दादाश्री : यह भी आत्मा ही है। इसे अलग मत मानना। इस तरह से आप अलग करने जाओगे तो आपको समझ में नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आप इसे प्रज्ञा क्यों कहते हैं? आत्मा ही कह दीजिए न।

दादाश्री : हं! ऐसा कह देते हैं लेकिन उसमें भी लोग वापस खुद का कुछ ले आते हैं। समझाने के लिए विस्तारपूर्वक कहा है। विस्तार का अर्थ ऐसा मत लगाना कि यों...

प्रश्नकर्ता : अगर इसे बारीक कातें तो प्रज्ञा और मोटा कातना हो तो आत्मा तो फिर क्या मूल आत्मा सचेत नहीं करता?

दादाश्री : हाँ, मूल आत्मा सचेत नहीं करता। अभी प्रज्ञा सचेत कर रही है। बाद में वह एक ही हो जाती है। जब अपनी पूरी रामायण खत्म हो जाती है, तब वह भी उसमें (आत्मा में) समा जाती है।

जिस ज्ञान से संसार छूट जाता है, वह आत्मज्ञान कहलाता है और जिस समय उस ज्ञान का उपयोग होता है, उस समय उसे प्रज्ञा कहा जाता है।

जो वर्तना में रखवाता है, वह आत्मा है और जो श्रद्धा में रखवाता है, वह प्रज्ञा है। वर्तन अर्थात् चारित्र।

प्रश्नकर्ता : आप में उस देखने वाले को प्रज्ञा कहा जाएगा या आत्मा? आपके संदर्भ में प्रज्ञा नहीं कहा जाएगा या कहा जाएगा?

दादाश्री : प्रज्ञा ही कहा जाएगा। प्रज्ञा के सिवा तो अन्य कुछ कह ही नहीं सकते। आत्मा तो कह ही नहीं सकते। संसार दशा में प्रज्ञा ही काम करती रहती है। सचेत करती है, अंदर सबकुछ वही करती है।

ध्याता कौन है और ध्यान किसका?

प्रश्नकर्ता : ध्याता, ध्येय और ध्यान किसे कहा जाता है? शुद्धात्मा ध्याता है या प्रतिष्ठित आत्मा?

दादाश्री : इस ज्ञान प्राप्ति के बाद प्रज्ञा ध्याता है, प्रतिष्ठित

आत्मा भी ध्याता नहीं है। प्रज्ञा ध्याता है। ध्येय वह 'खुद' है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह ध्येय है। ध्याता और ध्येय की एकता हो जाने से अंदर ध्यान उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : अभी शुद्धात्मा को ध्याता नहीं कह सकते?

दादाश्री : शुद्धात्मा तो अपना ध्येय है। शुद्धात्मा होना, वह अपना ध्येय है। शुद्धात्मा ही परमात्मा है, उसे जो भी कहो, वह यही है। प्रज्ञा ध्याता है और शुद्धात्मा ध्येय है क्योंकि आपको जो यह शुद्धात्मा पद दिया है, वह प्रतीति पद है। आप शुद्धात्मा हो नहीं गए हो लेकिन अगर अपलक्षण दिखाई दें तो आप अपने आपके लिए ऐसा मत मान लेना कि मेरा बिगड़ गया है। इसलिए शुद्धात्मा कहा है।

अभी उस शुद्धात्मा को प्रज्ञा कहो या अंतरात्मा दशा कहो, दशा अंतरात्मा कहलाएगी। लेकिन अंतरात्मा दशा कब तक है, प्रज्ञा के रूप में कब तक है? जब तक फाइलों का *निकाल* करना बाकी है, तभी तक। फाइलों का *निकाल* हो जाने के बाद तो फिर फुल गवर्नमेन्ट अर्थात् परमात्मा।

ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : तो ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञा, इन तीनों के बीच में क्या भेद है?

दादाश्री : ज्ञान अर्थात् जो खुद को करना पड़े। जितना जानते हैं उतना खुद को करना पड़ता है और विज्ञान अपने आप ही हो जाता है, हमें करना नहीं पड़ता और प्रज्ञा इन दोनों के बीच की स्थिति है। एक बार आप वैज्ञानिक तरीके से समझ गए कि इस दवाई को पीने से इंसान मर ही जाता है तो आप वापस कभी भी वह दवाई नहीं पीओगे। अगर वैज्ञानिक तरीके से समझ लोगे तो! और यों ही अगर कोई आपसे कहे कि यह दवाई पोइज़नस है और इस दवाई से मर जाते हैं तो भी इंसान पी लेता है। अत: जो ज्ञान क्रियाकारी है, वह वैज्ञानिक ज्ञान कहलाता है। जो ज्ञान क्रियाकारी होता है, स्वयं क्रियाकारी, वह

है विज्ञान। और जो ज्ञान क्रियाकारी नहीं है, खुद को करना पड़ता है, वह ज्ञान है। 'दया रखो, शांति रखो', वह करना पड़ता है। वह फिर खुद से हो नहीं पाता, वह ज्ञान कहलाता है।

अत: शास्त्रों में ज्ञान है, शास्त्रों में विज्ञान नहीं है। शास्त्रों में शास्त्रज्ञान है जबकि यह विज्ञान है इसलिए चेतन ज्ञान अंदर काम करता रहता है, वह ज्ञान ही काम करता रहता है जबकि शास्त्रों का ज्ञान चाहे कितना भी पढ़ो, रटो, लेकिन वह काम नहीं करता। हमें करना पड़ता है, जबकि यह विज्ञान तो अपने आप ही काम करता रहता है। अंदर से जागृति देता है, सबकुछ अपने आप ही होता रहता है। आप में करता है न, सबकुछ अपने आप? उसे कहते हैं विज्ञान। विज्ञान का अर्थ क्या है? चेतन ज्ञान, जो ज्ञान चेतन है, जो जागृति सहित है, वही विज्ञान है और वही आत्मा है। अभी प्रज्ञा के रूप में है। जब प्रज्ञा अपना काम पूरा कर लेगी, जब इन फाइलों का *निकाल* हो जाएगा तो प्रज्ञा खुद के स्वरूप में आ जाएगी। परमात्मा स्वरूप में।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा स्व से अभिन्न कब है?

दादाश्री : अभी स्व से अभिन्न नहीं है, लेकिन यह कहने का भावार्थ क्या है? प्रज्ञा, वह खुद ही 'स्वरूप' है। अभी जब तक आत्मा प्रकट नहीं हुआ है, तब तक गुनाह होते ही तुरंत चेतावनी देने का काम प्रज्ञा का है। जब वीतरागता रहती है, बाहर गुनाह नहीं होते, तब फिर प्रज्ञा खुद ही 'स्वरूप' है।

बुद्धि से भेद, प्रज्ञा से अभेद

प्रश्नकर्ता : यह जो अभेदता रहती है, वह उच्चतम कक्षा की बुद्धि कहलाती है या नहीं?

दादाश्री : नहीं, अभेदता अर्थात् बुद्धि का अभाव, वह ज्ञानभाव है। ज्ञान से सभी एक हैं और बुद्धि से अलग-अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : उसमें प्रज्ञा का समावेश है या नहीं?

दादाश्री : वही है न! प्रज्ञा से सभी एक ही हैं लेकिन बुद्धि से हम अलग-अलग हैं। हमने खुद में वह बुद्धि खत्म कर दी है। हम जैसे-तैसे करके उसे निकालते रहे हैं, जैसे-जैसे उदय में आती गई वैसे-वैसे *निकाल* कर दिया। उदय को संभालकर नहीं रखा। मूलतः पिछले जन्म में निकाल दी थी, इसलिए इस जन्म में बहुत नहीं निकालनी पड़ी। पहले निकाल दी थी न। अब आपको बुद्धि बहुत परेशान नहीं करती न?

अभेदता की प्राप्ति अर्थात्?

प्रश्नकर्ता : अभेदता क्या है? 'संपूर्ण अभेदता प्राप्त हो', ऐसा चरणविधि में माँगते हैं न!

दादाश्री : अभेदता अर्थात् तन्मयाकार। भगवान के साथ एक हो जाते हैं हम। अभी जो जुदाई है न, शुद्धात्मा और आप में कितना भेद है कि अभी प्रतीति से शुद्धात्मा हुए है। संपूर्ण श्रद्धा बैठ गई है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' इसका विश्वास हो गया है। थोड़ा बहुत अनुभव हो गया है लेकिन उस जैसे (रूप) हुए नहीं हैं। अतः भगवान से ऐसा कहते हैं कि उसी जैसा (रूप) बना दो। वही अभेदता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् बिल्कुल भी भेद नहीं।

दादाश्री : भेद है, अभी तक भेद है। अभी मुझे आपको शुद्धात्मा में लाना पड़ता है। बाद में लाना नहीं पड़ेगा। अभेद हो जाना है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार शुद्धात्मा के साथ अभेद हो जाता है न?

दादाश्री : नहीं, अहंकार नहीं। व्यवहार का *निकाल* करने के लिए यह जो प्रज्ञा अलग हुई है न, तो अब जब वह एक हो जाएगी तो काम हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कौन किसके साथ अभेद होता है?

दादाश्री : प्रज्ञा और शुद्धात्मा। ये दोनों जो अलग हैं, वे एक हो जाएँगे। अभी 'मैं पन' प्रज्ञा में बरतता है। हम जिसमें बरतते हैं,

वह प्रज्ञा है। अब अहंकार में नहीं बरतता। अत: 'मैं' चंदू भाई में बरतता था, तब अहंकार में कहलाता था। अभी प्रज्ञा में बरतता है। अर्थात् शुद्धात्मा नहीं, यानी कि वह, जिसे अंतरात्मा कहा गया है।

हमारी यह प्रज्ञा लगभग ऐसी ही है जैसे आत्मा में स्थिर हो गई हो। अत: हमें 'शुद्धात्मा' बोलना नहीं पड़ता या सोचना नहीं पड़ता कुछ भी और उस रूप में अभेदता जैसा ही लगता है। ज़रा सा बाकी है, चार प्रतिशत की वजह से। जबकि आपको अभेद होना है, धीरे-धीरे-धीरे करके जैसे-जैसे इन फाइलों का *निकाल* होता जाएगा, वैसे-वैसे अभेद होता जाएगा। फाइलों का पूर्ण रूप से *निकाल* हो गया तो समझो अभेद हो गया। फाइलों की ही झंझट है यह सारी। लेकिन अभी वह प्रज्ञा के रूप में है और प्रज्ञा भगवान का अंश है। जब काम पूर्ण हो जाएगा तब वापस उनमें समा जाएगी। भगवान और आत्मा एक ही हैं। आत्मा जब भौतिक में से छूटकर खुद के स्वरूप में ही रहता है, तब परमात्मा कहलाता है। निरंतर स्वरूप की रमणता, वही परमात्मा है और जब तक स्वरूप की रमणता भी है और यह रमणता भी है, तब तक अंतरात्मा। वही प्रज्ञा है।

(2.1)

राग-द्वेष

संसार का रूटकॉज़ - अज्ञान

प्रश्नकर्ता : वेदांत कहते हैं कि मल-विक्षेप और अज्ञान। जैन कहते हैं राग-द्वेष और अज्ञान। ये दोनों मत हैं मोक्ष में जाने के। ये तीन चीज़ें चली जाएँ तो इंसान मोक्ष पा ले। इनमें से मुख्य कॉमन क्या है? तो वह है 'अज्ञान'। रूट कॉज़ क्या है? राग-द्वेष रूट कॉज़ नहीं हैं, मल-विक्षेप रूट कॉज़ नहीं हैं तो फिर रूट कॉज़ क्या है? अज्ञान। यदि अज्ञान चला जाए तो फिर मोक्ष हो जाएगा।

इस ज्ञान प्राप्ति के बाद यहीं से हमें मोक्ष बरतता है, मुक्ति ही बरतती है। पहले अज्ञानता से मुक्ति होती है और फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सभी राग-द्वेष का *निकाल* हो जाता है। समभाव से *निकाल* होने लगा है, तो सभी राग-द्वेष का *निकाल* हो जाने पर फिर अंतिम मुक्ति, आत्यंतिक मोक्ष हो जाता है।

देहधारी ही बनता है वीतराग

जब तक ऐसा था कि 'मैं चंदूलाल हूँ', तब तक राग-द्वेष थे लेकिन अज्ञान चला गया तो राग-द्वेष गए। भले ही छोटा बच्चा हो, लेकिन फिर भी यदि अज्ञान चला जाए तो राग-द्वेष भी चले जाएँगे, सौ प्रतिशत। क्रमिक मार्ग के ज्ञानियों का सौ प्रतिशत अज्ञान नहीं जाता। अपने यहाँ तो सौ प्रतिशत अज्ञान चला जाता है अर्थात् राग-द्वेष बिल्कुल भी नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब तक देह है, तब तक राग-द्वेष नहीं

जाएँगे। अब आप तो कहते हैं कि जब तक अज्ञान है, तब तक राग-द्वेष नहीं जाएँगे?

दादाश्री : अज्ञान चला जाएगा तो राग-द्वेष रहेंगे ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : फिर शरीर रहता है या नहीं रहता?

दादाश्री : शरीर भले ही सौ बरस तक रहे और मस्ती में रहे।

प्रश्नकर्ता : वह 99.99 प्रतिशत। सभी के लिए नहीं है, वह आपके लिए है।

दादाश्री : अभी तो कितने सारे लोग ऐसे हो गए हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो ठीक है लेकिन यह तो राग-द्वेष छोड़ने की बात है अत: मेरा कहना ऐसा है कि जब तक देह है, जब तक प्राण हैं, तब तक प्रकृति रहेगी और तब तक राग-द्वेष हैं।

दादाश्री : तो फिर देह के जाने के बाद बचेगा क्या? वह तो जब देह की उपस्थिति में राग-द्वेष निकल जाएँगे, तभी वीतराग कहलाएगा, वर्ना राग-द्वेष तो रहते ही हैं। वीतराग तो बहुत हो चुके हैं हिन्दुस्तान में! अत: आपको यह जो पहले का प्रेजुडिस है न, इसीलिए आपको मन में ऐसा लगता है। अत: आपको समझ लेना है कि, 'ओहोहो! अभी भी प्रेजुडिस है।'

इनके परिणाम बताता हूँ कि जहाँ राग-द्वेष होंगे, वहाँ पर चिंता हुए बगैर रहेगी ही नहीं। इसलिए इन क्रमिक मार्ग के ज्ञानियों को चिंता होती है जबकि अक्रम में राग-द्वेष नहीं रहने की वजह से चिंता नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : संसार में राग नहीं रखें तो दु:ख होता है और अगर राग रखें तो मोक्ष रुक जाता है।

दादाश्री : ऐसा है न, अब आप वास्तव में क्या हो? रियली स्पीकिंग चंदू भाई हो या शुद्धात्मा?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा।

दादाश्री : तो फिर आपको राग-द्वेष वगैरह कुछ भी नहीं रहा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो राग-द्वेष नहीं हैं और अगर वास्तव में चंदू भाई हो तो आपको राग-द्वेष हैं।

यदि आप किसी पर गुस्सा हो गए तो मैं आपको इतना पूछ लूँगा कि, आप चंदू भाई हो या शुद्धात्मा हो? तब यदि आप कहो कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो फिर मुझे आपको कुछ भी कहने को रहा ही नहीं। अगर गुस्सा करते हो तो मैं समझ जाता हूँ कि जो माल है, वह निकल रहा है। उसे रोकने का हमें अधिकार नहीं है। आपको चंदू भाई से ऐसा ज़रूर कहना चाहिए कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। चंदू भाई से कहने में हर्ज नहीं है क्योंकि पड़ोसी है न! फाइल नं-1!

बाकी, लाइन ऑफ डिमार्केशन खिंच चुकी है। यह भाग आपका है और यह भाग इनका। जैसे कोई मकान हो, उसे वाइफ और पति बाँट लेते हैं सहमति से। बाँटने के बाद फिर तुरंत ही समझ जाते हैं कि यह मेरा नहीं है। इसी प्रकार से यह बँटवारा करने के बाद क्या आपका है और क्या उनका, उसमें दखल कैसे की जा सकती है?

अक्रम में राग-द्वेष रहित दशा

राग-द्वेष संसार का कारण है और जो राग-द्वेष रहित हो गए वे संसार से मुक्त हो गए। जगत् राग-द्वेष में ही रहता है। जब तक ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता, समकित प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक राग-द्वेष रहते हैं और क्रमिक मार्ग में समकित प्राप्त होने के बाद भी राग-द्वेष रहते हैं, यों अनुपात में। बीस प्रतिशत समकित प्राप्त हो चुका है और अस्सी प्रतिशत राग-द्वेष बचे हैं और यहाँ पर अक्रम में तो सौ प्रतिशत राग-द्वेष चले गए।

प्रश्नकर्ता : चंदू भाई की वृत्तियाँ शायद राग-द्वेष वाली हो सकती हैं।

दादाश्री : इसे राग-द्वेष नहीं कहेंगे। राग-द्वेष का मतलब क्या

है? 'मैं खुद ही चंदू भाई हूँ', वह जो मान्यता है, वही राग-द्वेष है और वह मान्यता बदलती नहीं है। 'मैं सो रहा हूँ, मैं ऐसा हूँ', वह सब जाता ही नहीं है। जबकि यह तो, जब हम ज्ञान देते हैं तब कहते हैं, 'यह मेरी फाइल है। मैं अलग हूँ और फाइल अलग है।' जिसने इस फाइल को फाइल जाना, वह आत्मा शुद्ध ही है। क्रमिक में तो इसे, 'मैं ही हूँ' ऐसा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो यह जो प्रतिष्ठित आत्मा है, उसे राग-द्वेष होते हैं?

दादाश्री : उसे भी राग-द्वेष नहीं होते। राग-द्वेष कब कहा जाता है? जब उसमें हिंसक भाव हों। यह तो सिर्फ डिस्चार्ज भाव है। जब तक चार्ज और डिस्चार्ज दोनों रहें, तब वह राग-द्वेष कहा जाता है। जबकि यह तो डिस्चार्ज भाव है अर्थात् भरे हुए माल का विलय हो रहा है।

अर्थात् अब गुस्सा आता है या कुछ भी होता है तो वह राग-द्वेष नहीं कहलाता। चंदू भाई किसी को एक धौल लगा दे तो वह राग-द्वेष नहीं है या फिर अगर चंदू भाई दो गालियाँ दे दे या किसी को दो धौल लगा दे तो चंदू भाई को उसका फल मिल जाएगा। आपको यह देखते रहना है कि चंदू भाई को लोगों ने कितनी धौल लगाई। अपना विज्ञान अब आपको समझ में आ गया?

राग, आसक्ति - परमाणु का विज्ञान

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर राग में से अनुराग हो जाता है और फिर आसक्ति होती है और फिर चाहे कोई भी दोष हो वह अच्छा ही लगता है।

दादाश्री : ऐसा है, राग कॉज़ेज़ हैं। अनुराग और आसक्ति इफेक्ट हैं। तो इफेक्ट को बंद नहीं करना है, कॉज़ेज़ बंद करने हैं।

क्योंकि यह आसक्ति कैसी है? एक महिला ने कहा, 'आपने मुझे और मेरे पुत्र को भी ज्ञान दिया है, फिर भी मुझे उस पर इतना अधिक राग है। यह ज्ञान दिया है फिर भी राग नहीं जाता।' मैंने कहा,

'वह राग नहीं है बहन। वह आसक्ति है।' तब कहने लगीं, 'लेकिन ऐसी आसक्ति नहीं रहनी चाहिए न?' मैंने कहा, 'वह आसक्ति आपको नहीं है।' अपने यहाँ लोहचुंबक हो और आलपिन पड़ी हों तो ऐसे-ऐसे करने से आलपिन हिलने लग जाती है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हिलती है।

दादाश्री : इन आलपिन में आसक्ति कहाँ से आई? उसी प्रकार से इस शरीर में लोहचुंबक जैसे गुण हैं क्योंकि यह इलेक्ट्रिकल बॉडी है। इलेक्ट्रिसिटी से शरीर में लोहचुंबक जैसा गुण आ जाता है लेकिन वह लोहचुंबक चाहे कैसा भी हो पर वह तांबे को नहीं खींचता। किसे खींचता है? सिर्फ लोहे को, स्व जाति को।

उसी तरह इसमें जो परमाणु हैं न, अपनी बॉडी में! वे लोहचुंबक वाले हैं तो स्व जाति को खींचते हैं। वही यह आसक्ति है, उसका तूफान तू देखता रह। तू यह देखता रह कि यह शरीर ऐसे कूदा और कहाँ जा रहा है वगैरह और यह समझना छोड़ दे कि 'मुझे हो रहा है।' अत: वापस फिर 'मुझे अब कुछ भी नहीं छू सकता', ऐसा करके दुरुपयोग कर लेगा तो क्या होगा? वह तो अंगारों में हाथ डालने के बराबर है। यह जागृति रखनी चाहिए कि 'मुझे' अर्थात् किसे? 'मैं शुद्धात्मा हूँ', यदि ऐसी जागृति रहती है तब तो फिर उसे कहने की ज़रूरत ही नहीं है कि 'मुझे कुछ नहीं हो सकता'! उस बच्चे पर सिर्फ आसक्ति है। परमाणु से मिलते-जुलते परमाणु आ गए हैं। तीन परमाणु आपके और तीन परमाणु उसके, मेरे तीन और आपके चार तो कोई लेना-देना नहीं है। विज्ञान है यह सब तो।

पागल पत्नी के साथ अच्छा लगता है और समझदार पत्नी उसे बुलाए तो अच्छा नहीं लगता क्योंकि परमाणु नहीं हैं पति में। मिलते-जुलते परमाणु नहीं हैं।

भगवान तो सिर्फ यह देखते हैं कि कितने राग-द्वेष होते हैं। राग-द्वेष नहीं होते! बाकी की सब चीज़ों से अब कोई लेना-देना नहीं है। क्रमिक वाले दूसरी क्रियाएँ क्यों बंद कर देते हैं? क्योंकि क्रियाएँ

हैं, इसीलिए राग-द्वेष होते हैं। 'अत: इन क्रियाओं को कम कर दो', जबकि यहाँ पर तो राग-द्वेष होते ही नहीं हैं, फिर क्या बचा? अब अगर ऐसा कहेंगे तो वह उल्टे रास्ते चलने लगेगा। और अगर आज्ञा पालन कर रहा होगा तो वह भी बंद हो जाएगा इसलिए कह नहीं सकते और फिर (आज्ञा पालन) कम हो जाएगा। अत: ऐसा चलाते रहना पड़ता है।

नहीं है शुद्धात्मा को राग-द्वेष

अभी इस ज्ञान के बाद जो राग-द्वेष होते हुए दिखाई देते हैं न, वह आकर्षण और विकर्षण है। वह *पुद्गल* का गुण है लेकिन 'मुझे ऐसा हो रहा है' कहा, वही राग है।

और फिर ये राग-द्वेष खुद का स्वभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव राग-द्वेष वाला है ही नहीं। स्वभाव से आत्मा वीतराग है। ये राग-द्वेष तो *पुद्गल* का स्वभाव है। अर्थात् आकर्षण और विकर्षण *पुद्गल* का स्वभाव है। *पुद्गल* के इस स्वभाव को खुद का स्वभाव मानकर खुद ऐसा कहता है कि मुझे राग-द्वेष हो रहे हैं। जब तक यह रोंग बिलीफ है कि 'मैं *पुद्गल* हूँ, यही मैं हूँ, चंदू भाई ही हूँ' तब तक ऐसा हाल रहेगा और जब 'मैं चंदू भाई हूँ' छूट जाएगा और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' हो जाएगा, तब ऐसा हाल नहीं रहेगा।

जहाँ राग-द्वेष हैं, वहाँ आत्मा नहीं है। जहाँ आत्मा है, वहाँ राग-द्वेष नहीं हैं। राग-द्वेष जितने कम आत्मा उतना ही प्रकट हुआ है! राग-द्वेष खत्म तो संपूर्ण आत्मा! यानी कि वीतराग पद दे दिया है। क्या यह कोई ऐसा-वैसा पद है? यह एक्ज़ेक्ट है। यह विचार करने योग्य नहीं है और अगर चिंता शुरू हो जाए तो समझना कि यह वीतरागता नहीं है। अब आपने इस तरफ का रुख किया है न, तो अब आपको उसके पुष्टि के कारण मिल आएँगे क्योंकि आप खुद शुद्धात्मा हो। यह बाकी का जो कुछ भी बचा है न, उस ज्ञेय और दृश्य को आप सामने लाओ तो उससे लेना-देना नहीं है। ज्ञेय तो ऐसा भी हो सकता है और वैसा भी हो सकता है। ज्ञेय तो, अंदर मन में

क्या कहता है, 'आत्म हत्या करनी पड़ेगी' लेकिन किसे? उसे न! हमें क्या? हम तो जानने वाले हैं। अर्थात् यह पद कुछ अलग ही प्रकार का है, वीतराग पद है।

प्रश्नकर्ता : शुरुआत में तो ज्ञाता-दृष्टा नहीं रह पाता और कहता है, 'नहीं, यह मुझे सेट नहीं होगा।'

दादाश्री : हाँ, ऐसा होता है और अब तो वास्तव में ज्ञाता-दृष्टा रह ही पाते हैं! उसमें तो रह ही नहीं सकते। उसमें तो ज़रा सा अंदर कुछ खिंचाव रहता था, आकर्षण रहता था। यह तो आकर्षण रहित है, कितना अच्छा है! आकर्षण बंद हुआ कि वीतरागता उत्पन्न हो जाती है तो यहाँ पर आपका आकर्षण बंद हो गया है और अब वीतरागता उत्पन्न होगी।

हम में भी पहले का वैसा माल भरा हुआ तो है लेकिन आकर्षण नहीं होता हमें। ज़रा सा भी आकर्षण नहीं। अत: फिर वहाँ पर वीतरागता रहती है हमें।

भरा हुआ माल है इसलिए अगर आपको अभी आकर्षण होने लगे तो, वह राग नहीं कहलाएगा। राग करने वाला कोई होना चाहिए, राग का कर्ता होना चाहिए और बिना कर्ता के राग नहीं हो सकता। क्या तू कर्ता है?

प्रश्नकर्ता : कभी तन्मयाकार हो जाते हैं इसलिए कर्ता बन जाते हैं।

दादाश्री : वह तो, जहाँ रुचि हो वहाँ पर तन्मयाकार हो जाता है। लोग जब पैसे गिनते हैं, तब तन्मय हो जाते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हो जाते हैं।

दादाश्री : हाँ बस! उनमें कोई गुनाह नहीं है। उसके लिए आत्मा ऐसा नहीं कहता कि आप तन्मयाकार क्यों हो गए? आत्मा तो आत्मा ही है और धीरे-धीरे वह दशा कम होती जाती है।

यह केवलज्ञान की ओर बढ़ता जाता है। निरंतर ज्ञान रहे, तब उसे केवलज्ञान कहा जाता है। यहाँ तो, अभी फाइलों का *निकाल* करना पड़ रहा है न!

तभी प्राप्त हो सकता है मोक्ष का पंथ

आप खुद चंदू भाई बन जाओ तो राग-द्वेष आपके कहलाएँगे वर्ना उसे राग-द्वेष कैसे कहेंगे? तो फिर पूछते हैं कि 'यह क्या हो रहा है?' यह जो हो रहा है, वह चंदू भाई को हो रहा है और आप शुद्धात्मा इसे जानते हो कि यह क्या हो रहा है और आप ऐसा भी कहते हो कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए।'

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह सब सही है।

दादाश्री : यानी कि आपका अभिप्राय अलग है इसलिए आप वीतराग हो। अत: हमने कहा है न कि पुरुषार्थ तो आपका ज़बरदस्त चल रहा है। पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ रह सकता है वर्ना यों तो ज़रा सी देर के लिए भी राग-द्वेष बंद नहीं होते। किसी पर राग-द्वेष होते हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं होते।

दादाश्री : तो वही आत्मा है और वह यह सब देखता ही रहता है। मन में खराब विचार आए, अच्छा विचार आए, यह हो, वह हो तो तुरंत ही सब को देखता है। किसी ने कैसी वाणी बोली, किसी ने कुछ बुरा कह दिया या अच्छा कह दिया हो तो भी राग-द्वेष नहीं होते। जहाँ राग-द्वेष नहीं होते, उसी को आत्मा कहते है और जहाँ राग-द्वेष होते हैं, वह कहलाता है संसार! देहाध्यास!

'राग-द्वेष, अज्ञान ए मुख्य कर्म नी ग्रंथ, थाय निवृति जेहथी ते ज मोक्षनो पंथ।' - श्रीमद् राजचंद्र।

जिस पंथ से राग-द्वेष की निवृति हो, वही मोक्ष का पंथ है। आपके राग-द्वेष निवृत हो चुके हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, अक्रम से ऐसा हो जाता है। अत: अक्रम मोक्ष का पंथ है।

दादाश्री : हाँ, यही मोक्ष का पंथ है।

'नहीं है मेरा' कहा, तभी से छूटने लगे

जिसे बंधना हो उसके लिए तो है ही न मार्ग! जिसे बंधना हो उसके लिए बुद्धि का मार्ग है ही। जिसे मुक्त होना है उसके लिए हर प्रकार की छूट है।

राग-द्वेष न किए जाएँ, उसी को मोक्षमार्ग कहते हैं। जो हो उसे देखता रहे। संसार तो है ही राग-द्वेष का निमित्त, खुद ही निमित्त है। निमित्त क्या करवाता है?

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष ही करवाता है।

दादाश्री : हाँ, तो फिर उस निमित्त में पड़ें ही नहीं न! यह 'मेरा नहीं है', ऐसा कहेंगे तो फिर मुक्त हो जाएँगे। यह 'मेरा नहीं है' कहा कि, वह खुद उससे अलग हो गया। हमने जो ज्ञान दिया है, उसमें यह दिखाया है कि 'क्या तेरा है' और 'क्या तेरा नहीं है'। यदि अभी वह ऐसा कह देगा तो मुक्त हो जाएगा। उस ज्ञान को चूक गए और एकाकार हुए कि चिपक पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : अंदर से इस प्रकार अलग रखकर ही बैठने योग्य है।

दादाश्री : अंदर और बाहर भी अलग रखना है। बाहर भी क्या लेना-देना है? तुझ से क्या लेना-देना है। अगर एक घंटे गाली-गलौच हो जाए तो वह मारपीट करने लगेगा। उसे क्या लेना-देना?

मन के विरोध के सामने....

मन के विरोध करने पर भी अगर राग-द्वेष नहीं हों तो बहुत हो गया। अगर मन विरोध करे तो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन राग-द्वेष नहीं होने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मन विरोध करे तब वीतरागता कैसे रह सकती है?

दादाश्री : रह सकती है। मन के विरोध को तो देखते रहना है। मन को तो पूरा देखना ही है न! मन दृश्य है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जहाँ मन का विरोध होता है, वहाँ वीतरागता नहीं रह सकती लेकिन ज्ञाता-दृष्टा रहा जा सकता है।

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टा रहना ही वीतरागता है। राग-द्वेष रहित हुए बगैर ज्ञाता-दृष्टा में नहीं रह सकते। जितने समय तक राग-द्वेष रहित रहे उतने समय तक ज्ञाता-दृष्टा रह सकेंगे।

प्रश्नकर्ता : मन का विरोध बहुत लंबे समय से चल रहा हो लेकिन फिर यदि एक्ज़ेक्टनेस में यह दिखाई दे कि, 'यह मन ज्ञेय है और हम ज्ञाता है', तो मन का वह विरोध खत्म हो जाता है।

दादाश्री : उसका समाधान होते ही खत्म हो जाएगा। बस! मन समाधान ढूँढता है, किसी भी तरीके से, एट एनी वे। अगर आप कह देते हो कि 'समाधान हो गया' तो वह खत्म हो जाएगा, पूरा बल्ब उड़ जाएगा उस क्षण।

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है कि उस समय मन को समाधान हो जाता है लेकिन वह रिलेटिव ज्ञान से होता है तो फिर वापस उसका रिऐक्शन तो आएगा ही न?

दादाश्री : उसके पीछे अवस्थाओं के रिएक्शन होते हैं। एक परत चली जाती है, फिर दूसरी परत आती है। हर एक चीज़ परत वाली होती है।

अब लोग तो यह नहीं जानते कि ऐसी स्थितियाँ होती हैं! क्या लोग ऐसा जानते हैं? इस चीज़ की कल्पना भी नहीं है न लोगों को।

महात्माओं में नहीं रहे राग-द्वेष

ये सभी जो राग-द्वेष रहित क्रियाएँ हैं, वे *पुद्गल* की क्रियाएँ

हैं। उन सब को क्रिया नहीं माना जाएगा। जो राग-द्वेष वाली क्रियाएँ हैं उनमें आत्मा की जवाबदेही आती है। चेहरे पर चिढ़-चिढ़ाहट आ जाए तब भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि राग-द्वेष हो गए हैं। सिर्फ वह व्यक्ति ही हमें बता सकता है कि राग-द्वेष हुए थे। चेहरे पर चिढ़-चिढ़ाहट दिखे तो भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि 'द्वेष हो गया'।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह चिढ़ा तो वह एकाकार हुआ होगा तभी चिढ़ेगा न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह चिढ़ता क्यों है?

दादाश्री : वह एकाकार नहीं हुआ हो तो भी ऐसा हो सकता है, *पुद्गल* क्रिया है। उसे यह पसंद नहीं हो तब भी यह क्रिया होती रहती है।

प्रश्नकर्ता : उसे ऐसा करना अच्छा नहीं लगता, क्या इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि वह उससे अलग है?

दादाश्री : वह तो दीये जैसी बात है न! ऐसा तो सभी कह सकते हैं। छोटा बच्चा भी कह सकता है लेकिन अगर वह चिढ़ जाए तो हम ऐसा नहीं मान लेंगे कि इसे राग-द्वेष हुए हैं। अगर तू चिढ़ जाए तो मैं यह नहीं मानूँगा लेकिन यदि अन्य कोई नहीं चिढ़े तब भी मानेंगे कि इसे राग-द्वेष हैं। जिसने ज्ञान नहीं लिया हो और बहुत शांति से बात कर रहा हो तो भी हम कहेंगे कि 'राग-द्वेष हैं'। सामान तैयार है, राग-द्वेष वाली मशीनरी चल ही रही है। चिढ़ जाता है तो वह द्वेष में है और नहीं चिढ़े तो किसी राग में है लेकिन किसी न किसी में है ज़रूर। और इस अक्रम विज्ञान का प्रताप तो देखो! और फिर कोई साधु-आचार्य इसे कबूल भी नहीं करेंगे। इसके बावजूद भी अपने महात्मा कबूल करते हैं। दो-पाँच नहीं, सभी। सभी एक साथ सहमत होंगे। जबकि वे सब लोग क्या कहते हैं? 'अरे, ये सभी

पागल लगते हैं, हं!' उन सब की दुनिया सयानों की और हमारी सारी दुनिया पागलों की!

पहले तो अगर साहब कुछ उल्टा-सीधा करते थे तो हमें रात-दिन उसी बारे में विचार आते रहते थे और मन में ऐसा होता रहता था कि 'अगर मौका मिले तो साले को चपेट में ले लूँ'। उसके लिए जो खराब विचार आते थे, उन सब को द्वेष कहा जाता है और यदि कोई बॉस हमारी बहुत हेल्प करे तो उसके लिए बहुत अच्छे भाव होते हैं तो वह राग कहलाता है, बस। अब द्वेष भी नहीं होता और राग भी नहीं होता, समभाव से *निकाल* हो जाता है।

क्रियाएँ सभी प्राकृतिक हैं। उसमें राग-द्वेष नहीं हैं, वही मोक्ष है। अगर कड़वे पर द्वेष और मीठे पर राग होता है तो वह अज्ञानता का स्वभाव है। अज्ञान चला जाए तो कड़वा-मीठा नहीं रहता।

फिर वह है भरा हुआ माल

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने से पहले और अभी भी कई बार ऐसा होता है कि हमें खुद को कोई तकलीफ हुई हो और वैसी ही कोई तकलीफ किसी और को भी हो जाए तो अंदर से ऐसा लगा कि 'अच्छा हुआ जो ऐसा हुआ'। वह क्या है?

दादाश्री : ऐसा जो होता है कि 'अच्छा हुआ' तो वह द्वेष का परिणाम है और अगर ऐसा लगे कि 'बुरा हुआ' तो राग का परिणाम है। ये राग-द्वेष के परिणाम के जो भाव अंदर भरे थे, वह माल आज निकल रहा है। भगवान के वहाँ कुछ भी अच्छा या बुरा है ही नहीं। सभी कुछ ज्ञेय ही है। वह सिर्फ जानने योग्य ही है।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसा हो तब क्या करना चाहिए? प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए?

दादाश्री : जब ऐसा हो तो उसे देखना है, यहाँ पर ऐसा हुआ और यहाँ पर ऐसा हुआ। इसमें हमें यही देखना है। और यदि कभी द्वेष परिणाम से सामने वाले व्यक्ति के साथ कुछ ज़्यादा ही अन्याय

होने लगे तो वहाँ पर चंदू भाई से ऐसा कहना है कि, 'भाई, तुम प्रतिक्रमण करो। तुमने ऐसा क्यों किया? अत: प्रतिक्रमण करो।' अगर ऐसा कुछ ज़्यादा हो जाए तो! यदि सामने वाले के लिए दु:खदाई नहीं है तो कोई ज़रूरत नहीं है। वह तो सिर्फ अपनी समझ है। हमें अपनी तरह से धो देना है। ज्ञेय की तरह देखने से धुल जाएगा। और अज्ञान दशा में तो इस तरह किसी का कुछ बिगड़ जाए तो ऐसा लगता है कि अच्छा हुआ और उसके प्रति द्वेष रहता ही है। अभी बाद में पीछे से द्वेष नहीं रहता। लगता ज़रूर है कि खराब हुआ, अच्छा हुआ ऐसा लगता है अत: यह जो सब निकल रहा है, वह भरा हुआ माल है।

विषय ग्रंथि छेदन, वहाँ निज स्पष्ट वेदन

प्रश्नकर्ता : यह जो द्वेष है, वह जागृति में रखता है और राग तन्मयाकार करवाता है तो इन काम-क्रोध से क्या नुकसान होता है? उसकी ज़रूरत नहीं है?

दादाश्री : काम-क्रोध दु:ख ही देते रहते हैं। बहुत दु:ख देते हैं। उसकी ज़रूरत तो, ऐसा है न कि जब तक संसार उसे अच्छा लगता है, तब तक उसकी ज़रूरत है लेकिन यदि उसे दु:ख सहन नहीं होता है तो वास्तव में दु:ख देने वाले काम-क्रोध ही हैं, बेटा नहीं देता। बाहर कोई भी दु:ख नहीं देता। ये खुद के अंतर शत्रु ही दु:ख देते हैं।

ये षडरिपु ही दु:ख देते हैं। बाहर कोई दु:ख देने वाला है ही नहीं, ये ही सब हैं। वे यदि इससे अलग हो गए तो निबेड़ा आ जाएगा। यह मैं देखता हूँ और बाहर से मुझे कोई दु:ख नहीं देता। जब तक अंदर षडरिपु थे, तब तक दु:ख दे रहे थे। अब अंदर उन लोगों ने वह सब बंद कर दिया है। सभी अपने-अपने गाँव चले गए हैं।

घर में अकुलाहट होती है, उसका क्या कारण है? क्या इसलिए कि पति ऐसा है? नहीं! तो क्या पत्नी ऐसी है? नहीं! राग-द्वेष हैं इसलिए दु:ख होता है। राग-द्वेष नहीं होंगे तो किसी के साथ टकराव होगा ही नहीं। राग-द्वेष हैं, खुद को। राग-द्वेष अर्थात् स्वार्थ। हर कोई अपने स्वार्थ में पड़ा रहे तब उसे कहते हैं राग-द्वेष। हमें क्या स्वार्थ

की कोई झंझट है? हमें किसी से कुछ भी नहीं चाहिए। तो कोई झंझट ही नहीं है। यह तो एक रसास्वाद चखने के लिए देखो कितनी झंझट, कितनी झंझट, कितनी झंझट और मान लो कि चखकर हमेशा के लिए सुखी हो जाते तो भी अच्छा था लेकिन इन्हें चखने के बाद भी रोना-धोना, रोना-धोना। सच बताना, रोना-धोना है या नहीं, चखने के बावजूद भी?

प्रश्नकर्ता : होता है। एकदम सत्य!

दादाश्री : यह सब राग-द्वेष की वजह से है। स्त्री का भी दोष नहीं है और पुरुष का भी दोष नहीं है। अच्छे-अच्छे लोगों के बीच भी झगड़े होते हैं। उसका कारण है राग-द्वेष और यदि वीतरागता पूर्वक होता तब तो झगड़ा होता ही नहीं लेकिन ऐसा कब हो सकता है? आत्मज्ञान सहित हों, तब। तब यदि स्त्री कहे कि, 'आप में अक्ल नहीं है' तो पति कहेगा, 'यह अच्छा हुआ कि तूने आज कहा, यह चंदू तो ऐसा ही है, शुरू से ऐसा ही है। तूने आज कहा तब मैंने जाना। तुझे तो अभी पता चला, मैं तो पहले से ही जानता हूँ इस चंदू को!'

प्रश्नकर्ता : जब स्पष्ट वेदन होता है, तब तो विषय-विकार भी नहीं रहते न?

दादाश्री : जब तक विषय का अस्तित्व है, तब तक स्पष्ट वेदन हो ही नहीं सकता। स्पष्ट वेदन कब होता है, जब इस मन-वाणी व देह पर भी खुद का मालिकीपन न रहे। हमारी निर्विचार दशा है, हमारी निर्विकल्प दशा है, हमारी निरीच्छक दशा है, तभी यह दशा उत्पन्न हुई है। इस दशा के प्रति हम धन्य-धन्य हैं, उसे नमस्कार करते हैं। इस दशा तक पहुँचना है, उसके बाद एकाध स्टेशन बाकी बचा है, तो भले ही बचा। इतने सारे स्टेशन पार कर लिए। अब एक का क्या हिसाब? और वह भी भगवान की हद में ही होगा। सिग्नल भी आ चुका है, सभी कुछ आ चुका। कब से ही आ चुका है। आपने भी सिग्नल पार कर लिया है। प्लेटफॉर्म तो नहीं आया है लेकिन सिग्नल तो पार कर लिया है।

प्रश्नकर्ता : भगवान की हद और भगवान की उपस्थिति दोनों ही।

दादाश्री : हाँ, भगवान की हद और भगवान की उपस्थिति! कल्याण कर देंगे न!

सौ प्रतिशत, जा चुके हैं राग-द्वेष

देखो इसमें ऐसा लिखा है कि, 'यदि एक परमाणु जितना भी राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ का भाव विद्यमान है तो सभी शास्त्रों का जानकार होने के बावजूद भी वह आत्मा को नहीं जानता है और क्योंकि आत्मा को नहीं जानता है इसलिए अनात्मा को भी नहीं जानता। यानी कि सम्यक् दृष्टि भी नहीं है' ऐसा कहा है। क्या करोगे अब? बिल्कुल सौ प्रतिशत सही बात लिखी है और मैंने सौ प्रतिशत सही बात दी है। तो यह भूल किससे हो रही है?

प्रश्नकर्ता : 'राग का एक भी परमाणु नहीं रहा है', व्यक्ति को ऐसा भान कब होता है? और वह भान क्यों नहीं हो पाता?

दादाश्री : लेकिन उसे भान के बारे में पूछना चाहिए। 'यह करेक्ट है या मुझ से कोई गलती हो रही है', ऐसा पूछना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे पता चलेगा कि राग-द्वेष का एक भी परमाणु बचा है या नहीं बचा?

दादाश्री : राग का परमाणु नहीं बचा है, ऐसा मैं जानता हूँ और आप नहीं जानते, ऐसा क्यों?

प्रश्नकर्ता : यों नहीं। व्यवहार में?

दादाश्री : उसे व्यवहार कहो या त्यौहार कहो लेकिन ये परमाणु नहीं हैं आप में। व्यवहार क्या एक ही तरह का होता है? त्यौहार नहीं आते? दिवाली का त्यौहार, धनतेरस का त्यौहार वगैरह नहीं आते! लेकिन आप में राग के परमाणु नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : राग का एक भी परमाणु नहीं है। बहुत ही बड़ी बात है यह तो!

दादाश्री : हाँ। यदि एक भी परमाणु होता तब तो फिर ऐसी सम्यक् दृष्टि कैसे हो सकती है? हाँ। और नहीं तो क्या! आप सम्यक् दर्शन वाले हो। इनका लिखा हुआ गलत है या आपका?

प्रश्नकर्ता : यह लिखा हुआ सही है।

दादाश्री : मेरा दिया हुआ हंड्रेड परसेन्ट सही है। मैंने जो सम्यक् दर्शन दिया है, हंड्रेड परसेन्ट सही है और इसमें जो लिखा हुआ है, वह भी सही है तो यह ढूँढ निकालो कि भूल किसकी है।

अब आप चंदू भाई हो या शुद्धात्मा हो?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा।

दादाश्री : तो शुद्धात्मा में राग या द्वेष का एक भी परमाणु नहीं बचा है। तो आपको संपूर्ण शुद्धात्मा बना दिया है पद में, तो तब फिर ऐसा क्यों कर रहे हो? आपको हंड्रेड परसेन्ट उस पद पर बिठा दिया है न, जहाँ पर किंचित्मात्र भी राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं। आपको समझ में आ गई न यह अंटी? यह तो आपकी जो पहले की आदत है न, वह जाती नहीं है। आदत में ऐसा, कि यह मुझे ही हो गया। यह तो गारन्टेड है। यह कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं है। यह गारन्टेड मोक्ष दिया हुआ है। हाथ में मोक्ष दिया हुआ है लेकिन जिसे जितना भोगना आए उतना उसके बाप का।

लड़ते-करते हैं तो भी वीतराग

राग-द्वेष ही संसार है। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद यदि आज्ञा का पालन किया जाए तो आज्ञा पालन करते ही राग-द्वेष बिल्कुल खत्म हो जाते हैं। यानी कि अंदर राग-द्वेष नहीं रहते। और अगर वह बच्चों को मार रहा हो तब भी हम कहते हैं कि यह मोक्ष में ही है। अभी अगर आपके साथ बस में महात्मा आएँ, चार सौ-पाँच सौ लोग हों बसों में, तो अगर वे लड़ाई-झगड़ा करें तो हम तो उन्हें आशीर्वाद देंगे। कहेंगे, 'लड़ना, मेरी हाज़िरी में लड़ना।' गैरहाज़िरी में ऐसा छुटकारा नहीं हो पाएगा। यहाँ मेरी हाज़िरी में

लड़ो तो इसका हल आ जाएगा। साफ हो जाएगा न यह सब। फाइलें क्लियर हो जाएँगी।

अपने सभी महात्मा मानो, जैसे वीतराग ही हैं। व्यापार करते हैं, लड़ाई-झगड़ा करते हैं, फिर भी वीतराग हैं। यह उन्हें पता नहीं चलता फिर भी मुझे तो पता चलता है न! आपको पता नहीं चलता? आपको मन में ऐसा लग सकता है कि 'अरे, किस प्रकार से वीतराग हूँ?' लेकिन मुझे तो पता है न! क्योंकि डॉक्टर तो जानता है। मरीज़ के मन में ऐसा लगता है कि, 'अरे यह दर्द बढ़ा या घटा?' वहम होता है लेकिन मुझे तो पता है न कि क्या दवाई दी है। इन्हें ऐसा लगा कि इनमें बढ़ा या घटा तो तुरंत इसे दवाई बता दी न! सभी जगह राग-द्वेष, राग-द्वेष, राग-द्वेष, चाहे किसी भी धर्म में जाओ, राग-द्वेष रहित नहीं है। संतों पर राग और नालायक पर द्वेष! और क्या!

एक व्यक्ति ने मुझ से कहा, 'मैं गुरु के आश्रम में गया था, वहाँ पर मुझे राग-द्वेष नहीं हैं न?' मैंने कहा, 'वहाँ पर भी बहुत सारे, यहाँ जितने ही वहाँ पर भी हैं।' क्योंकि जब तक तेरे पास राग-द्वेष हैं तब तक वे होते रहेंगे, चाहे तू किसी भी जगह पर जा। जगह क्या करेगी इसमें? तेरे पास पूँजी ही राग-द्वेष की है। तू यदि जगह बदल देगा तो भी पूँजी तो पूँजी है, बोलेगी ही। मैंने आपके पास पूँजी रहने ही नहीं दी, तो फिर चाहे किसी भी जगह पर जाओ लेकिन राग-द्वेष होंगे ही कैसे? 'मैं' और 'मेरा', वही राग-द्वेष हैं। 'मैं' और 'मेरा' नहीं रहेगा तो राग-द्वेष कहाँ से होंगे? जिनमें 'मैं' और 'मेरा' नहीं हो, ऐसे कौन से साधु-संत बचे हैं? आपका 'मैं' और 'मेरा' है तो ज़रूर लेकिन ड्रामेटिक है। ड्रामा में राग-द्वेष नहीं होते, चाहे कितना भी लड़ाई-झगड़ा करें, मारा-मारी करें, गालियाँ दें, फिर भी राग-द्वेष नहीं रहते। राग-द्वेष रहित जगह यदि देखनी हो तो वह देखना। आपने ड्रामा नहीं देखा? नहीं?

राग-द्वेष हैं व्यतिरेक गुण

प्रश्नकर्ता : यों तो राग-द्वेष व्यतिरेक गुण कहलाते हैं न?

दादाश्री : हाँ, व्यतिरेक। यदि ज्ञानीपुरुष ज्ञान दें न, तो दोनों के ही छूट जाते हैं। आपको दिखाई ज़रूर देते हैं अस्तित्व में लेकिन दोनों के ही नहीं हैं। ये गुण मूल चेतन में नहीं हैं और मूल परमाणुओं में भी नहीं हैं। विकृति में हैं ये। अत: ये गुण दोनों के ही नहीं हैं, फिर भी उत्पन्न हुए हैं और विकृति की वजह से कितने ही लोग कहते हैं, 'मेरे आत्मा में हैं'। कितने ही लोग कहते हैं कि '*पुद्गल* में हैं'।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल,* वह व्यतिरेक गुण कहा जाता है?

दादाश्री : हाँ, यह मूल परमाणुओं का गुण नहीं है, न ही चेतन का गुण है।

पुद्गल अर्थात् पूरण और गलन। ज्ञान मिलते ही पूरण बंद हो गया। अब सिर्फ गलन ही बचा है। पूरण दोषों से बंधन है, गलन दोष निर्जरा हैं। गलन होते हुए दोष बंध (कर्म बंधन) रहित निर्जरा हैं और पूरण दोष संवर रहित बंध हैं।

पुद्गल में राग-द्वेष नहीं, वही ज्ञान

वह तो *पुद्गल* ही है। *पुद्गल* के अलावा और कुछ है ही नहीं! *पुद्गल* में राग-द्वेष होने को ही कहते हैं संसार। मूर्च्छा आ जाए उसी को कहते हैं संसार और *पुद्गल* में राग-द्वेष नहीं हों, तो उसे कहते हैं ज्ञान। उसी को कहते हैं मुक्ति। बस इतना ही है। है *पुद्गल* ही। वही का वही *पुद्गल।* कुछ भी नहीं बदलता। पहले राग-द्वेष होते थे और अब राग-द्वेष नहीं होते। खाना-पीना, घूमना-फिरना, बोलना-चलना, सत्संग-वत्संग वगैरह सब *पुद्गल* है लेकिन जिस तरह से साबुन से मैल निकालने के बाद साबुन अपना मैल चिपकाता जाता है। ज्ञानीपुरुष के साथ किया गया सत्संग शुद्ध सत्संग कहलाता है। हम यहाँ पर ऐसा ही सत्संग करते हैं। इस सत्संग में ज्ञानियों का मैल नहीं चढ़ता और आपका मैल उतर जाता है जबकि बाहर तो वापस गुरु का मैल चढ़ जाता है। तो वापस टीनोपॉल डालना पड़ता है। उसके बाद जब वह मैल निकल जाता है तब टीनोपॉल का मैल चढ़ता है। यह शुद्ध सत्संग है इसलिए मैल नहीं चढ़ता। अब राग-द्वेष नहीं होते न? तो हो चुका!

इन्द्रियों से देखते हैं, जानते हैं, इसके बावजूद भी राग-द्वेष नहीं होते, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है और जिसे राग-द्वेष हैं, वह इन्द्रिय ज्ञान से देखता है, जानता है! इन्द्रिय दृष्टि राग-द्वेष करवाती है, समकित दृष्टि शुद्धात्मा ही देखती है।

ज्ञानप्रकाश को नहीं है मूर्च्छा

प्रश्नकर्ता : यह जो शुद्धात्मा है, वह तो ज्ञान स्वरूप है और प्रकाश स्वरूप है न?

दादाश्री : इस तरह का प्रकाश नहीं है।

प्रश्नकर्ता : नहीं। अलग तरह का प्रकाश लेकिन प्रकाश रूपी शुद्ध चेतन....

दादाश्री : यह तो पर प्रकाशक है। वह ऐसा प्रकाश नहीं है। प्रकाश का मतलब क्या है कि किसी भी चीज़ में मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होने देता। जगत् की सभी चीज़ें देखता है लेकिन इस जगत् में मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होने दे, ऐसा प्रकाश है। यदि कोई फोर्ट (बोम्बे का एक बाज़ार) में जाए और सभी चीज़ें देखे तो कितनी चीज़ों के प्रति मूर्च्छा होगी?

प्रश्नकर्ता : होती है।

दादाश्री : लेकिन यह प्रकाश मूर्च्छा नहीं होने देता। जेब में अगर कुछ हो, रुपए हों तब भी लेने का मन नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : देखते रहने का मन करता है।

दादाश्री : नहीं, देखने में हर्ज नहीं है। देखना तो आत्मा का धर्म ही है लेकिन उससे उसे मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होती। इस प्रकार प्रकाश की वजह से देख पाता है फिर भी मूर्च्छा नहीं होती लेकिन यदि प्रकाश न हो और देखे कि तुरंत ही मूर्च्छा आ जाती है उसे। साड़ी देखी कि घर आकर उसे याद आता रहता है कि वह वाली साड़ी अच्छी थी न! वह साड़ी में खो जाती है। जबकि यह ज्ञान

मिलने के बाद प्रकाश मिला है इसलिए उसे मूर्च्छा नहीं होती। मूर्च्छा कम हो गई है न?

प्रश्नकर्ता : चीज़ देखते हैं लेकिन उसकी इच्छा नहीं होती।

दादाश्री : हाँ! अर्थात् मूर्च्छा नहीं होती। यह प्रकाश मूर्च्छा नहीं करवाता। अरे, राग-द्वेष वाला सभी कुछ देखते हैं, ऐसे देखते हैं, वैसे देखते हैं। ऐसे अलट-पलटकर देखते हैं, वैसे अलट-पलटकर देखते हैं लेकिन मूर्च्छा नहीं होती है। आत्मा, आत्मा की जगह पर और वे उनकी जगह पर। जबकि (अज्ञान दशा में) मूर्च्छा आने पर आत्मा पूरा ही उसमें घुस जाता है।

प्रश्नकर्ता : जो मूर्च्छा आती है, क्या वह प्राकृतिक स्वभाव की मूर्च्छा है?

दादाश्री : हाँ, प्राकृतिक स्वभाव की मूर्च्छा है। हमने उसे चारित्रमोह कहा है अर्थात् पहले का जो मोह भरा हुआ है, वही आज प्रकट हुआ। उसका हम ज्ञान द्वारा समभाव से *निकाल* करते हैं। समभाव से *निकाल* करना, उसी को कहते हैं ज्ञान से *निकाल* कर देना। आँखें यों आकर्षित होती हैं लेकिन उसी के साथ ज्ञान हाज़िर हो जाता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए तो उससे खत्म हो जाता है। यह ज्ञान मूर्च्छा को खत्म किए बगैर नहीं रहता, लेकिन चारित्रमोह तो रहता ही है।

प्रश्नकर्ता : वह सारा व्यवस्थित है क्या?

दादाश्री : हाँ, व्यवस्थित है।

जो राग-द्वेष रहित है, वह है अहिंसक

प्रश्नकर्ता : कौन सी स्टेज में होने वाले राग हिंसा हैं?

दादाश्री : यह राग और द्वेष दोनों ही हिंसा हैं। द्वेष भी हिंसा है और राग भी हिंसा है। राग से ही लोग हिंसा करने को प्रेरित होते हैं। यह समझने जैसी बात है। एकदम से समझ में नहीं आएगा। भगवान

अहिंसक क्यों कहलाए? क्योंकि उनमें राग-द्वेष नहीं थे इसलिए वे अहिंसक कहलाए। संपूर्ण अहिंसक!

प्रश्नकर्ता : स्वभाव में आ जाए, वह अहिंसक।

दादाश्री : स्वभाव में आ जाए तब तो वह भगवान ही कहलाएगा लेकिन राग-द्वेष का अभाव हो जाए तो उसी को कहते हैं अहिंसक। राग-द्वेष का अभाव हो जाने के बाद स्वभाव में आ जाता है।

जितना रोग उतना राग

प्रश्नकर्ता : गांधी जी ने श्रीमद् राजचंद्र के बारे में लिखा है कि उनमें जितना रोग था, उतना ही उनमें राग था।

दादाश्री : नियम ऐसा ही है। जितना रोग उतना ही राग होता है। आज उसे रागरूपी रोग हो या न भी हो। ऐसा क्यों? अभी यह जो रोग है, वह राग का ही परिणाम है लेकिन आज शायद राग न भी हो। अब आप सब को अगर कोई रोग है तो वह राग का परिणाम है। आपको राग-द्वेष नहीं हैं इसलिए अभी अन्य कोई वैसे राग परिणाम नहीं हैं।

इसलिए कृपालुदेव के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता कि 'ऐसा ही है'। क्योंकि ऐसा कहा जा सकता है कि यह राग का परिणाम है लेकिन ऐसा नहीं माना जा सकता कि अभी राग है। अब ऐसा है कि ऐसी सूक्ष्म बात तो किसी को समझ में नहीं आ सकती न? ज्ञानीपुरुष बताएँ तब समझ में आता है। यह तो जैसा दिखाई दिया वैसा कह दिया।

और तीर्थंकरों को? उनकी भूमिका ही ऐसी होती है, बस वीतराग! राग-द्वेष रहित परिणाम होते हैं उनके। और फिर उन (परिणामों) में वे खुद राग-द्वेष रहित रहते हैं। ये दोनों साथ में रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : द्वेष की वजह से भी रोग होता है या फिर राग की वजह से ही होता है?

दादाश्री : राग-द्वेष दोनों ही से रोग। राग कहने का मतलब इतना ही है कि राग-द्वेष दोनों ही रहते हैं। जहाँ इनमें से एक है, वहाँ पर दूसरा रहता ही है। ज़्यादातर रोग तो द्वेष की वजह से ही होते हैं। काफी कुछ द्वेष के, जो बहुत दु:ख देते हैं न, वे द्वेष के रोग हैं और यदि बहुत दु:ख नहीं दे तो, वह राग का रोग है। बहुत दु:ख न दे, और जल्दी से दवाई मिल जाए तो वे सब राग के परिणाम हैं।

अत: यह सब हिसाब है। जितना कूदना है उतना कूदो। आपको अपने दम पर कूदना है इसलिए अगर कोई गाली दे तो उसका निबेड़ा ला देना क्योंकि गाली देने की किसी की सत्ता नहीं है और अगर उसने गाली दी तो देअर इज़ समथिंग रोंग। उसका निबेड़ा ला देना। अगर वह कोई नुकसान कर दे तब भी निबेड़ा ले आना। आप किसी का नुकसान कर दो तो प्रतिक्रमण कर लेना। जितने तरीके हैं, वे आपको बता दिए। किसी के लिए कुछ उल्टा हो जाए तो प्रतिक्रमण करना। समाधान होते-होते यदि वह समाधान अपने मन में फिट हो जाता है तो उसके बाद जैसे ही हमारी वह दशा उत्पन्न हुई कि उसी समय यह समाधान हाज़िर हो जाएगा। यह ज्ञान हाज़िर हो जाएगा और वह फल देगा हमें, इसलिए रात-दिन सुनते रहना है। व्यापार बंद करके नहीं। व्यापार भी करते रहना और यह भी करते रहना। जो एक पक्ष में पड़ता है, वह दोनों ही पक्षों का बुरा करता है। अगर संसार पक्ष में पड़ा तो संसार भी बिगाड़ता है और इस निश्चय पक्ष में, आत्मा का भी बिगाड़ता है। धर्म में पड़ा हुआ संसार बिगाड़ता है और आत्मा को भी बिगाड़ता है। दोनों को बिगाड़ता है लेकिन जो दोनों में संतुलित रहे वह कुछ भी नहीं बिगाड़ता। हम यही बताना चाहते हैं। पागल मत बनना।

राग-द्वेष रहित, वही शुद्ध ज्ञान

अब, आत्मा को उपयोग में रखना, अर्थात्? आत्मा कोई चीज़ नहीं है, ज्ञान दर्शन है। उस ज्ञान दर्शन को उपयोग में रखना है, शुद्ध

ज्ञान दर्शन। शुद्ध ज्ञान दर्शन किसे कहा जाता है? राग-द्वेष रहित ज्ञान दर्शन, वही शुद्ध ज्ञान दर्शन है और इस जगत् के पास जो ज्ञान दर्शन है, वह राग-द्वेष वाला है। वह अशुद्ध है, राग-द्वेष सहित है और जो राग-द्वेष रहित है, वह शुद्ध ज्ञान कहलाता है।

[2.2]

पसंद-नापसंद

अहंकार एकाकार हो तभी राग-द्वेष

प्रश्नकर्ता : अपनी चित्तधारा में यह पसंद-नापसंद आए तो क्या यह ज्ञाता-दृष्टा में अजागृति है या नहीं?

दादाश्री : जागृति पूर्वक खुद को पता चलता है कि यह यहाँ पर बैठेगा और यहाँ पर नहीं बैठेगा। फिर वहाँ पर भी नहीं बैठता। मेरा कहना है कि बैंच है घर पर। हम रास्ते पर चल रहे हैं और थकान की वजह से बैठना पड़ा। एक टूटी हुई बैंच है और नीचे से ज़रा सड़ी हुई है, तो उस बैंच पर बैठने लगे तो उसमें कहीं उसके प्रति राग-द्वेष नहीं है, पसंद व नापसंदगी रहती है। लाइक और डिसलाइक।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् प्रकृति में जो माल भरा हुआ है, वही?

दादाश्री : वही, और कुछ नहीं। उसमें यदि अहंकार एकाकार रहता तो राग-द्वेष होते। आज यदि उसका अहंकार चला नहीं गया होता, तो उसी चीज़ के लिए राग-द्वेष होते। अहंकार जा चुका है उसी का यह फल है कि राग-द्वेष नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ पसंद व नापसंदगी रहती है।

नहीं रहे राग-द्वेष, अक्रम विज्ञान की प्राप्ति के बाद

प्रश्नकर्ता : पसंद आए और बहुत पसंद आए, इन दोनों में क्या फर्क है? बहुत पसंद आए तो क्या वह राग कहलाता है?

दादाश्री : अच्छा लगे अर्थात् आइ लाइक और बहुत अच्छा

लगे तो उसमें वेरी लाइक। उसमें कोई फर्क नहीं है। इससे राग नहीं होता। अपना ज्ञान देने के बाद फिर राग होता ही नहीं है। हमारी आज्ञा का पालन करने से राग नहीं होता। राग भी नहीं होता और द्वेष भी नहीं होता और राग-द्वेष से ही संसार कायम है। अपना ज्ञान मिलने के बाद राग-द्वेष नहीं होते और जो क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं, वे राग-द्वेष रहित हैं। उनमें से एक्सट्रैक्ट निकल चुका है। जिस तरह अगर दालचीनी में से एक्सट्रैक्ट खींच लिया जाए न तब भी वह कहलाती है दालचीनी ही लेकिन उसमें दालचीनी के गुण नहीं होते, वह सिर्फ लकड़ी ही होती है। उसी तरह इसमें भी एक्सट्रैक्ट निकल चुका है।

जिसमें अहंकार मिश्रित हो, वे राग-द्वेष कहलाते हैं। डिस्चार्ज राग-द्वेष को पसंद-नापसंदगी कहते हैं। अत: यदि कोई चीज़ हमें अच्छी लगती है और कोई चीज़ें पसंद नहीं है तो वह राग-द्वेष नहीं है। पसंद-नापसंद डिस्चार्ज हैं। अगर राग-द्वेष होते तब तो कर्म बंधन हो ही जाता। पसंद में अहंकार मिल जाए तब वह राग कहलाता है।

ऐसा नहीं है कि पसंद-नापसंद सिर्फ आप ही को हैं, हमें भी हैं। अगर कोई यहाँ गद्दी पर नहीं बैठा हो तो हम यहाँ अंदर आकर सीधा गद्दी पर ही बैठ जाएँगे। यहाँ नीचे नहीं बैठेंगे। तब अगर कोई कहे कि क्या आपको गद्दी पर राग है? 'नहीं।' तब अगर वह कहे, 'आप यहाँ नीचे बैठ जाइए' तो हम वहाँ पर बैठ जाएँगे। हमें द्वेष नहीं है लेकिन फिर भी लाइक और डिसलाइक बचे हैं। पहले तो हम यही लाइक करेंगे लेकिन अगर कोई यहाँ से उठा दे तो हमें द्वेष नहीं होगा लेकिन (पहली बार में) बैठेंगे तो यहीं पर। उससे कर्म नहीं बंधेंगे।

भाए या न भाए तो उसमें दखल किसकी

भोजन खा लेने के बाद फिर याद न आए, वह इसलिए है क्योंकि राग-द्वेष चले गए हैं।

प्रश्नकर्ता : भोजन में भी लाइक-डिसलाइक होता है न? भोजन में भी यह पसंद है और यह नहीं पसंद, ऐसा होता होगा न?

दादाश्री : होता है न। सभी में, वह हर एक चीज़ में होता है। भोजन नहीं भाना और पसंद नहीं आना, उन दोनों में बहुत फर्क है। उसे खट्टा खाना हो फिर भी खा नहीं पाए तो वह और भी अलग चीज़ है। उसमें अंदर परमाणु की दखल है। वे नहीं खाने देते। दस साल पहले शायद आप कहते होंगे कि मुझे गुड़ का लड्डू नहीं भाता और आज आप कहते हो कि गुड़ का भाता है लेकिन शक्कर का नहीं भाता। इसका क्या कारण है? साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स! अंदर परमाणु बदल गए। अंदर जो माँगने वाले हैं, वे सभी बदल गए जबकि व्यवहारिक व्यक्ति को ऐसा समझ में आता है कि यह सब मैं ही कर रहा हूँ।

हम अगर उससे पूछें कि, 'यदि तू कर रहा है, तब फिर यदि तुझे खाना है तो तू क्यों नहीं खा पा रहा है?' 'लेकिन मैं क्या करूँ? नहीं भाता' ऐसे कहता है। अरे, लेकिन क्यों? तुझे खाना है और नहीं भाता तो मुझे यह बता कि इसमें दखल किसकी है? वह यही समझता है कि मुझे इसलिए नहीं भाता क्योंकि मेरा स्वभाव ऐसा हो गया है। अब ऐसा कैसे समझ में आएगा? अन्य कोई दखल है, उसकी खबर ही नहीं है न?

दादा की पसंद-नापसंद

प्रश्नकर्ता : अक्रम ज्ञानी को पसंदगी-नापसंदगी रहती है क्या?

दादाश्री : पसंदगी-नापसंदगी दिखाई देती है। बस उतना ही, नाटकीय। नाटक में जो पसंद न हो उस पर द्वेष नहीं और जो पसंद है उस पर राग नहीं।

प्रश्नकर्ता : ज़रा उदाहरण देकर समझाइए न! नाटकीय पसंदगी-नापसंदगी।

दादाश्री : 'भिक्षा देना मैया पिंगला' कहता है न लेकिन अंदर मन में समझता है कि 'मैं लक्ष्मीचंद हूँ, यह नाटक नहीं करूँगा तो मेरी तनख्वाह काट लेंगे।' इसलिए रोता है, बनावटी रोता है। अब

उसे देखकर चार लोग घर छोड़कर चले गए, वे वापस नहीं आए। वे समझे कि वास्तव में इस बेचारे को इतना दु:ख हो रहा है। उसे पूछा होता तो पता चलता कि यह नाटक में है। 'मैं लक्ष्मीचंद तरगाड़ा हूँ', ऐसा जानता है न वह?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो जानता है। ठीक है।

दादाश्री : हाँ। इसलिए आप जानते हो कि मैं शुद्धात्मा हूँ और चंदू भाई का नाटक करते रहो। नाटक तो करना पड़ेगा न, हूबहू!

ये पसंदगी-नापसंदगी वगैरह सब शरीर का स्वभाव है। शरीर का अर्थात् स्थूल का, *पुद्गल* का स्वभाव है। आपको जो होता है वह रति-अरति कहलाता है। जब दादा आते हैं तो हर एक व्यक्ति सेफसाइड (दादा के नज़दीक बैठने की जगह) ढूँढता है या नहीं ढूँढता? तो सेफसाइड पर बैठना रति कहलाता है। तब अगर कोई पूछे, 'अरे, आपने दादा का ज्ञान लिया है न? यह रति क्यों है आपको?' इस *पुद्गल* का स्वभाव ही ऐसा है। जहाँ अच्छी जगह होती है पहले वहीं जाकर बैठता है। फिर अगर कोई कहे कि 'आप इस गद्दी पर क्यों बैठे हो, नीचे बैठो' तो मैं नीचे बैठ जाऊँगा भाई! उससे आंतरिक वातावरण चेन्ज नहीं होता, एक बूँद बराबर भी नहीं। अत: रति-अरति तो रहेंगे ही अंत तक। यह तो *पुद्गल* का स्वभाव है।

प्रश्नकर्ता : क्रमिक के जो ज्ञानी होते हैं, उन्हें यदि सिर्फ इफेक्ट ही होता है तो वह रति-अरति ही है?

दादाश्री : जितना उनका अहंकार शुद्ध करना बाकी है, उतने में ही उन्हें राग-द्वेष होते हैं और बाकी के भाग में सिर्फ रति-अरति ही रहती है। बाहर के लोगों को तो सभी चीज़ों में राग-द्वेष होते हैं। छोटी-छोटी बातों में भी राग और द्वेष। यह ज्ञानी होने का फल है। आधा ज्ञान हो तो आधा। जितना अहंकार कम हुआ उतने राग-द्वेष कम हो जाते हैं। जितना साबुत है, उसमें राग-द्वेष होते हैं। ये सारी बातें बहुत सूक्ष्म हैं! आपको तो इतनी ही समझनी हैं। मेरी पाँच आज्ञा का पालन करो। उसी में हैं आपके कॉज़ेज़! बाकी सब इफेक्ट है।

उपेक्षा से शुरू वीतरागता की राह

प्रश्नकर्ता : उपेक्षा और द्वेष के बारे में ज़रा समझाइए न!

दादाश्री : उपेक्षा अर्थात् पसंद न हो, फिर भी द्वेष नहीं और द्वेष अर्थात् उपेक्षा नहीं होती लेकिन नापसंद है तो वहाँ पर द्वेष होता है। इतना तो वह समझता है कि द्वेष करने में फायदा नहीं है। यह नुकसानदायक है, ऐसा समझकर उपेक्षा रखता है।

उपेक्षा तो हम वहाँ करते हैं न! कुसंग की उपेक्षा करते हैं। शराबी हो, या और कोई जो रमी खेलते हैं ऐसे ही दूसरे लोग तो ऐसा कहना चाहते हैं कि वहाँ पर उपेक्षा रखते हैं, द्वेष नहीं रखते। जहाँ द्वेष नहीं है, वह उपेक्षा कहलाती है और अगर द्वेष हो तो उपेक्षा नहीं कहलाती। संसार के लोग द्वेष रखते हैं। गलत चीज़ पसंद नहीं आए तो उस पर द्वेष और पसंदीदा पर राग। उपेक्षा अर्थात् उस तरफ द्वेष भी नहीं और राग भी नहीं। 'हमें क्या लेना-देना', ऐसा कहते ही हो जाएगा अलग।

प्रश्नकर्ता : उपेक्षा किस वजह से उदय में आती है?

दादाश्री : वह खुद के हिताहित के साधन देखता है इसलिए उपेक्षा करता है। द्वेष करने पर बुरा लगता है। गलत है और गलत को गलत जानना है और उसके प्रति द्वेष नहीं होना चाहिए। अतः खुद के आत्मा के हित के लिए उपेक्षा रखनी है।

प्रश्नकर्ता : जिसका प्रवर्तन उदय कर्म के अनुसार होता है, उसे उपेक्षा कह सकते हैं?

दादाश्री : सभी उदय कर्म ही हैं न! उपेक्षा कहने का तात्पर्य क्या है कि अगर उदय कर्म की वजह से किसी के प्रति हमें खराब भाव होते रहें और उससे खुद अलग रहें कि ऐसा नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो यह जो आप कई बार कहते हैं न कि, 'भाई, हम तो पोटली जैसे हैं। जहाँ ले जाओ वहीं पर चले जाएँगे।' तो वह उपेक्षा भाव का उदाहरण कहलाएगा?

दादाश्री : नहीं! वह तो मालिकी रहित भाव ही कहा जाएगा।

उपेक्षा अर्थात् क्या कहना चाहते हैं कि जैसे वह है ही नहीं। यों उस पर ध्यान ही मत दो।

प्रश्नकर्ता : उपेक्षा में अहंकार है न?

दादाश्री : वह तो अहंकार का ही काम है। जब तक अहंकार है, तभी तक उपेक्षा है।

प्रश्नकर्ता : नि:स्पृहता और उपेक्षा में क्या फर्क है?

दादाश्री : नि:स्पृहता, वह तो उसकी कमी है। नि:स्पृही अर्थात् 'हम' वाला, 'हम' वाला। इगोइज़म बढ़ता जाए तो नि:स्पृही जबकि उपेक्षा में इगोइज़म नहीं बढ़ता और उपेक्षा में से धीरे-धीरे उदासीनता और उसके बाद वीतरागता का जन्म होता है। उपेक्षा और उदासीनता में से जन्म होता है, वीतरागता का।

नि:स्पृहता तो सभी जगह पर है। नि:स्पृहता तो एक बार मन में तय कर ले, कोई साधु नि:स्पृह हो और उसके साथ यह भी बैठा है तो उसे देखकर वह भी नि:स्पृह हो जाता है। जो नि:स्पृही होते हैं न, उनमें बरकत ही नहीं होती। कहते हैं, 'हम नि:स्पृह हैं' इसलिए वह लड़का भी सीख जाता है, 'हम नि:स्पृह हैं'। वह सन्यासी मना करता है कि 'खाने-पीने का कुछ मत लाना!' तब वह भी मना करता है। नि:स्पृह तो एक उच्च प्रकार का द्वेष है इसलिए हम कभी भी नि:स्पृह नहीं हुए न! आपके *पुद्गल* के बारे में हम नि:स्पृह हैं और आपके आत्मा के बारे में सस्पृह हैं। नि:स्पृह-सस्पृह। यदि नि:स्पृह रहेंगे तो अंदर द्वेष रहेगा।

आत्मा के बारे में सस्पृह अर्थात् हम नि:स्पृह-सस्पृह हैं। आपने देखे हैं नि:स्पृह? 'हमें क्या, हमें क्या, चले जाओ, ले जाओ' ऐसा करके गालियाँ देते हैं और ऐसा सब करते हैं!

जो सस्पृही व्यक्ति होता है न, वह विनयी होता है इसलिए क्योंकि उसे इच्छा है और जो नि:स्पृही हो गया है, उसमें विनय नहीं

होता। वह तो जानवर जैसा होता है। अगर कुछ बोले तब भी जानवर जैसा बोलता है। मैंने तो ऐसे बहुत नि:स्पृह साधु देखे हैं।

नि:स्पृह हो जाए तो इस तरफ गिर जाता है और अगर सिर्फ सस्पृह रहे तो उस तरफ गिर जाता है। सस्पृह-नि:स्पृह की आवश्यकता है।

प्रश्नकर्ता : नापसंदगी में द्वेष न रहे तो वह उपेक्षा कहलाती है, तो अभाव में भी ऐसा ही है न? किसी व्यक्ति पर यदि हमें अभाव रहे तो उस पर द्वेष तो होता ही नहीं है न?

दादाश्री : नापसंदगी का सवाल ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : नहीं! उपेक्षा में?

दादाश्री : उपेक्षा में अर्थात् 'अपने लिए हितकारी नहीं है यह चीज़!' लेकिन उसके प्रति द्वेष रहित व्यवहार। संसार के लोग द्वेष रखते हैं। प्याज़ के प्रति द्वेष रहा करता है। देखते ही चिढ़ मचने लगे तो उसे उपेक्षा नहीं कहेंगे। उसे देखें या वह हमारे पैर से छू जाए तब भी चिढ़ नहीं मचती। इसके बावजूद भी हमें (उससे कुछ) लेना-देना नहीं होता। उन लोगों को इफेक्ट होता है।

प्रश्नकर्ता : किसी पर अभाव की वजह से द्वेष आता है न दादा? किसी पर अभाव है उसका अर्थ यह कि ज़रा द्वेष है न?

दादाश्री : अभाव उसी को कहते हैं कि जहाँ द्वेष हो। जहाँ द्वेष नहीं हो उसे डिसलाइक कहा जाता है। वह आत्मा तक नहीं पहुँचता। वह इन्द्रियों तक पहुँचता है इसलिए द्वेष नहीं कहलाता। अगर आत्मा तक पहुँचे तो द्वेष कहलाता है। यानी कि लाइक और डिसलाइक तक पहुँचता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो उदासीनता है, वह उपेक्षा से भी आगे की चीज़ है न?

दादाश्री : उदासीनता अलग चीज़ है। वह आगे की स्टेज है। उदासीनता और वीतरागता, इन दोनों के बीच में कुछ डिफरेन्स है और

वह तो ज्ञानी भी कर सकते हैं। अहंकार की ज़रूरत नहीं है उदासीन होने के लिए। जबकि उपेक्षा में तो अहंकार की ज़रूरत है ही।

उपेक्षा से आगे है उदासीनता

प्रश्नकर्ता : उदासीनता और आलस्य, इन दोनों के बीच किस तरह से भेदांकन किया जाए? गहने पहनने में आलस्य आता है क्योंकि बैंक में से लाने पड़ते हैं, यह करना पड़ता है, तो इन दोनों के बीच के भेद को कैसे परखें?

दादाश्री : आप बच्चों को क्या सिखाते हो? आप बच्चे को यह कैसे बताते हैं कि वह आलसी है या उदासीन हो गया है? उदासीन व्यक्ति को अगर आलसी कहा जाए तो बहुत बड़ा गुनाह है। उदासीनता तो वीतराग होने से पहले की दशा है। वह साधारण जन समाज की बात नहीं है। अत: आप जो कह रहे हो वह सब प्रमाद है, आलस्य ही है। उदासीनता नहीं आई है। उदासीनता कैसे आएगी? इतने बड़े अहमदाबाद शहर में उदासीनता आती होगी? अगर सभी चीज़ें मिल जाएँ तो? आपको किस वजह से लगता है कि उदासीनता है?

प्रश्नकर्ता : घूमने-फिरने की, पहनने-ओढ़ने की, ये सब जो है, उसे ऐसा लगता है कि ये सारी तकलीफें क्यों उठानी तो उसमें मेरा प्रमाद है या आलस्य है? उसे खुद को कैसे पता चलेगा कि 'मुझ में उदासीनता प्रकट हुई है या फिर यह मेरा आलस्य है?'

दादाश्री : उदासीनता तो वैराग्य आने के बाद की उच्च दशा है और वीतराग होने से पहले की दशा है। बहुत सख्त वैराग्य रहने लगे और जब तक वीतरागता उत्पन्न न हो जाए, उस समय उदासीन दशा रहती है। वह बहुत उच्च दशा है। वह यों ही नहीं हो सकती, इन लोगों में नहीं हो सकती!

प्रश्नकर्ता : पच्चीस साल की उम्र में जो इच्छाएँ होती हैं, वैसी इच्छाएँ चालीस साल या पैंतालीस साल में नहीं रहती तो इन सब में डिफरेन्शिएट किस तरह से करें कि वास्तव में यह उदासीनता है या फिर यह सब मंद पड़ चुका है?

दादाश्री : यह तो, जो ऐसा लगता है कि मंद हो गई हैं, वे तो अभी फिर से जागेंगी। अभी तो वे जागेंगी। सत्तर साल के बूढ़े को जलेबी याद आती है, लड्डू याद आते हैं। अरे, तरह-तरह के स्वांग याद आते हैं। चबा नहीं पाता तब भी जो नहीं चबाई जा सकें, ऐसी चीज़ें याद आती हैं। अत: यह तो ऐसा है न कि विषय सिर्फ जवानी में ही नहीं रहता, बुढ़ापे में भी बहुत विषय जागता है। इसलिए कोई उदासीनता नहीं आने वाली। परेशान मत होना। उसका डर मत रखना।

प्रश्नकर्ता : उदासीनता की सही डेफिनेशन बताइए।

दादाश्री : उदासीन का मतलब क्या है? जब देखता है तब अच्छा लगता है। जब तक देखे नहीं तब तक उसे याद नहीं आता। याद आए पर कचोटे नहीं, तो वह उदासीन दशा है। उससे आगे की दशा वीतरागता कहलाती है। तब तक उदासीन दशा रहती है। उसे खुद को वह याद ही नहीं आता और जब ऐसी कोई चीज़ दिखाई दे तब वह उसे सिर्फ भोग लेता है लेकिन जैसे ही वह चीज़ गई तो फिर कुछ भी नहीं, उदासीन।

हम जिसे उपेक्षा भाव कहते हैं वैसा नहीं। यह उदासीन तो उच्च स्थिति है। अत: उदासीनता आने में देर लगती है। अभी तक तो वैराग्य भी नहीं आया है। उदासीनता अर्थात् नाशवंत चीज़ों के प्रति भाव इतना अधिक टूट जाता है और अविनाशी की खोज रहने के बावजूद भी वह प्राप्त नहीं हो पाता!

प्रश्नकर्ता : उदासीनता या उपेक्षा, क्या ये वीतरागता के आधार हैं?

दादाश्री : उदासीनता से शुरुआत होती है वीतरागता की। उपेक्षा उदासीनता के पहले की स्टेज है। वह बुद्धि द्वारा है।

प्रश्नकर्ता : सामान्य उदासीनता और भाव उदासीनता के बारे में ज़रा समझाइए। इनमें क्या फर्क है?

दादाश्री : भाव उदासीनता का अर्थ क्या है? कर्म नहीं बाँधता और सामान्य उदासीनता अर्थात् वीतराग भाव के नज़दीक। उपेक्षापन।

उपेक्षा अर्थात् उसके प्रति उदासीन भाव, अर्थात् उस तरफ कोई राग-द्वेष नहीं।

भाव उदासीनता तो बहुत उच्च चीज़ है। उसमें तो कर्म ही नहीं बंधते। अपने यहाँ जब ज्ञान देते हैं तो वह ज्ञान भाव उदासीनता का है। यह विज्ञान भाव उदासीनता वाला है। आलू नहीं खाता और यह नहीं खाता, वह नहीं खाता। भाई! हमें अगर इसी जन्म में मोक्ष में जाना होता तब अगर ये फूलों की माल नहीं पहनते तो भी चलता। लेकिन अभी तो एक जन्म की देर है और शायद दो भी हो जाएँ। यहाँ भला क्या नुकसान हो सकता है! अपने काबू में आ गया है। पूरा ब्रह्मांड़ काबू में आ गया है। फिर क्या नुकसान हो सकता है? हमारी इच्छा भी नहीं है ऐसी सुगंधि लेने की!

प्रश्नकर्ता : उदासीनता और वीतरागता में क्या फर्क है?

दादाश्री : उनमें फर्क है। उदासीनता वीतरागता की जननी है। वीतरागता की माता है। माता होगी तभी बच्चा होगा न? अत: वीतरागता अंतिम दशा है और उदासीनता शुरुआत की दशा है। शुरुआत में उदासीनता आ जाती है, यानी राग और द्वेष दोनों की तरफ। उदासीनता का मतलब क्या है कि पक्षपात नहीं, किसी के भी प्रति पक्षपात नहीं। जहाँ द्वेष करना हो वहाँ भी पक्षपात नहीं, राग करना हो तो भी पक्षपात नहीं और फिर जब आगे बढ़ता है तो वीतरागता उत्पन्न होती है लेकिन जब तक उदासीनता है तब तक दया रहती है। और जहाँ दया है, वहाँ पूर्ण दशा नहीं है। अत: करुणा सब से बड़ी चीज़ है। कारुण्यता उत्पन्न हो जाएगी तो पूर्ण हो जाएगा!

ज्ञानी के कहे अनुसार चलेंगे न तो फुलस्टॉप आ जाएगा। कोई भी दखल नहीं!

प्रश्नकर्ता : आत्मा उदासीन भाव से रहा हुआ है और दूसरा आत्मा का स्वभाव तो ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी है, तो उदासीन भाव से किस प्रकार रह सकता है?

दादाश्री : उदासीन अर्थात् ऐसा कहने का भावार्थ यह है कि संसार में उसे कोई अपेक्षा नहीं है। जो मूल आत्मा है न, उसे संसार से कोई अपेक्षा नहीं है इसलिए उदासीन भाव से है। इन लोगों से यदि ऐसा कहेंगे कि वीतराग भाव से है तो समझ में नहीं आएगा लेकिन यदि उदासीन कहेंगे तो समझ में आ जाएगा। संसार की उसे पड़ी ही नहीं होती, उसे लेना-देना ही नहीं है। उसका खुद का स्वभाव अलग, और संसार का स्वभाव अलग है। संसार का स्वभाव *पुद्गल* स्वभाव है और खुद का स्व स्वभाव है।

शुद्ध चेतन तो उदासीन भाव से है। सिर्फ प्रकाश ही देता है। तुझे जिसमें उपयोग करना हो उसमें कर क्योंकि वह तो प्रकाश देने भी नहीं आता। जैसे कि यह सूर्य कहीं भी प्रकाश देने नहीं आता, उसका स्वभाव है और हम बेकार ही बिना बात के उपकार मानेंगे तो उसे बल्कि गुस्सा आ जाएगा। कहेगा कि, 'ये लोग कैसे बेकार हैं!' वह तो उसका स्वभाव है।

जहाँ राग-द्वेष, वहाँ यादें

पसंद एक भ्रांत अभिप्राय है। यादें पसंद के आधार पर रहती हैं लेकिन जिनमें राग-द्वेष होते हैं न, उसी में याद रहता है।

प्रश्नकर्ता : अब अगर पसंद करेगा तभी राग-द्वेष कहलाएगा न? पसंद कर-करके ही सब याद रखता है न यह?

दादाश्री : पसंद तो ठीक है। जिनमें राग, राग अर्थात् पसंद आना। उसमें सभी कुछ आ गया। यदि एक ही शब्द में कहें तो सिर्फ पसंद ही नहीं, जिन पर राग है वह सबकुछ याद रहता है और द्वेष है, वह भी याद रहता है।

प्रश्नकर्ता : शुरू से आखिर तक सभी चीज़ों को पसंद कर-कर के राग इकट्ठा किया है।

दादाश्री : ऐसा है न, राग में तो पसंद समा जाती है। पसंद में राग नहीं समाता।

अत: जिन पर राग और जिन पर द्वेष है, वे उसे याद आते ही रहते हैं। वीतराग को याद नहीं आता। लेकिन वह शब्द तो सिर्फ एक इस वाक्य के अधीन लिखा गया है। लेकिन वीतराग का मतलब यदि ऐसा निकालें कि याद नहीं आता तो याद तो सभी साधु-संन्यासियों को भी नहीं आता और सभी वहाँ हिमालय में पड़े रहते हैं तो उसका अर्थ उल्टा हो जाएगा। फिर वीतराग का अर्थ ही क्या है? जैसा है वैसा, राग-द्वेष रहित वीतराग! वीतरागों को तो भूलने-करने को कुछ रहता ही नहीं न! उन्हें तो जब राग ही नहीं है तो फिर याद ही नहीं आएगा। राग को भूलना ही कहाँ रहा? राग-द्वेष वाला भूलता नहीं है कभी भी।

प्रश्नकर्ता : याद आए तो वीतराग नहीं है।

दादाश्री : हाँ। यादें राग-द्वेष के अधीन हैं। वह अकेला शब्द नहीं, सिर्फ 'भूलना' शब्द ही नहीं, परंतु पूरी डिक्शनरी ही नहीं है वहाँ पर।

फर्क, स्नेह और राग में

प्रश्नकर्ता : क्या स्नेह का मतलब राग है?

दादाश्री : स्नेह अर्थात् चिपचिपाहट। आम के प्रति स्नेह होने लगे तो वह चिपक जाता है। मित्र के लिए स्नेह होने लगे कि चिपक जाता है। स्नेह अर्थात् चिपचिपाहट। स्नेह और राग में बहुत फर्क है।

प्रश्नकर्ता : स्नेह और राग में क्या फर्क है?

दादाश्री : स्नेह, वह चिपचिपापन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या राग से भी आगे है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। राग बहुत विषम है। स्नेह तो टूट भी सकता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे गाढ़ कहा है न?

दादाश्री : गाढ़ है फिर भी टूट जाता है। स्नेह अर्थात् सिर्फ चिपचिपापन। अन्य कुछ नहीं।

प्रश्नकर्ता : उसमें राग नहीं होता?

दादाश्री : नहीं। जो चिपकता है वह चिपचिपाहट की वजह से। फिर अलग भी हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो यह आकर्षण जैसा है? आकर्षण जैसा?

दादाश्री : आकर्षण में राग उत्पन्न होता है। एक पत्ता उड़ता हुआ आया और आप पर चिपक गया, अब वह स्नेह से चिपका है। लेकिन गर्मी पड़ते ही अंदर का पानी सूख जाता है। उखड़कर अपने आप ही गिर जाता है। गीला है, इसलिए चिपक गया यहाँ पर लेकिन जब गर्मी पड़ती है, उस समय?

प्रश्नकर्ता : अलग हो जाता है।

दादाश्री : हमें उखाड़ना नहीं पड़ता। जबकि राग अलग चीज़ है। राग तो, जब तक वीतरागता न आ जाए तब तक राह पर नहीं आने देता। तुझे अब किस पर राग होता है?

प्रश्नकर्ता : मुझे किसी पर भी नहीं होता।

दादाश्री : हाँ, तो ठीक है! वीतराग कहा जाएगा। अभी वीतराग नहीं है, वीतद्वेष कहा जाएगा। द्वेष नहीं रहा।

❖❖❖❖❖

[2.3]

वीतद्वेष

परिभाषा राग-द्वेष की

राग-द्वेष हो जाते हैं?

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष होते तो हैं ही न!

दादाश्री : तो राग-द्वेष बंद होने का कोई साधन तो होगा न?

प्रश्नकर्ता : सही समझ मिलनी चाहिए।

दादाश्री : द्वेष बंद हो जाए तो अच्छा है या फिर राग बंद हो जाए तो अच्छा?

प्रश्नकर्ता : द्वेष तो समझे, लेकिन राग का क्या अर्थ है? द्वेष अर्थात् ईर्ष्या, किसी के लिए बैर।

दादाश्री : ईर्ष्या, तिरस्कार, अभाव, नापसंदगी और उसके विरोधी शब्दों में राग आता है। राग अर्थात् पसंद, आकर्षण।

अब द्वेष से यह सारा संसार दु:खी है। राग से दु:खी नहीं है। राग से सुख ही उत्पन्न होता है लेकिन उसी सुख में द्वेष समाया रहता है। उसी में से द्वेष के धुएँ निकलते हैं, अत: भगवान ने फिर राग को भी छोड़ने को कहा है। पहले वीतद्वेष बन जा। भगवान पहले वीतद्वेष बने और फिर वीतराग बने।

जेल के प्रति राग होता है?

प्रश्नकर्ता : राग ही जन्मांतर बढ़ा देता है न?

दादाश्री : वह तो बढ़ा ही देता है न, राग तो!

प्रश्नकर्ता : राग भी आग है न?

दादाश्री : राग? राग आग नहीं। राग आग होता तो राग होता ही नहीं। इच्छा अग्नि है, राग आग नहीं है। जब राग होता है न तब तो बल्कि इंसान को अच्छा लगता है, ठंडक महसूस होती है।

प्रश्नकर्ता : द्वेष तो बेकार पटाखे जैसा है। फुस्स करके उड़ जाएगा। द्वेष ज़्यादा नुकसान नहीं पहुँचाता लेकिन यह जो राग है वह बहुत नुकसान पहुँचाता है। क्या यह बात सही है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। यह जगत् द्वेष से खड़ा है। बैर से और बैर में से राग उत्पन्न हुआ है। अत: मूल कारण बैर है। दूसरे शब्दों में कहें तो जगत् बैर से खड़ा है। वह द्वेष, बैर वगैरह एक ही तरह के हैं। उससे यह जगत् खड़ा है अत: निर्बैरी हो जा ताकि किसी जगह बैर न रहे! जब आत्मज्ञान प्राप्त होता है तो सब से पहले वीतद्वेष बन जाता है। उसके बाद वीतराग बनता है।

इस संसार में जो राग है, वह किस जैसा है? जैसे कि, जेल में बैठा हुआ इंसान जेल में जाते समय रोता है लेकिन जेल में जाने के बाद जेल को लीपता-पोतता है। लीपता है या नहीं लीपता, अगर वहाँ खड्डे वगैरह हों तो? उससे हमें लगेगा कि, 'ओहोहो! जेल पर राग है।' उसके बाद यदि हम उससे पूछें कि, 'तुझे जेल पर राग है?' तब वह कहता है, 'नहीं भाई, जेल पर कभी राग होता होगा? लेकिन यहाँ रात को सोएँ कैसे? इसलिए ऐसा कर रहे हैं।'

उसी तरह इस संसार पर भी राग नहीं है लेकिन क्या हो सकता है? लेकिन यह तो क्या होता है कि यहाँ फँस चुके हैं इसीलिए लीपना-पोतना पड़ता है, सभी कुछ करना पड़ता है। लीपना पड़ता है या नहीं लीपना पड़ता?

प्रश्नकर्ता : लीपना पड़ता है, दादा।

दादाश्री : बाहर वाले लोग ऐसा समझते हैं कि इसे जेल पर राग हो गया है। अरे भाई, कभी राग होता होगा जेल पर! मज़बूरन करना पड़ रहा है सबकुछ। नहीं करना पड़ रहा?

मूलतः द्वेष ही भटकाता है

प्रश्नकर्ता : प्रेम और मोह भी द्वेष जितने ही जोखिम वाले हैं? दोनों में से ज़्यादा जोखिम वाला कौन है?

दादाश्री : प्रेम से ज़्यादा जोखिम द्वेष में है। प्रेम में जोखिम कम है क्योंकि द्वेष में से प्रेम जन्म लेता है। द्वेष बीज है। प्रेम का बीज प्रेम नहीं है। प्रेम का बीज द्वेष ही है।

आपको घर में सभी के साथ प्रेम हो लेकिन आपको द्वेष नहीं होता तो समझना कि फिर से बीज नहीं पड़ेगा और यदि द्वेष होगा तो बार-बार उस पर प्रेम आता रहेगा। इसके बावजूद भी इस ज्ञान के बाद वैसा नया करार नहीं होगा। नए करार के बारे में आप समझ लेना। बाकी, अगर इन सब में ज़्यादा गहराई में उतरोगे तो यह तो बहुत गहन साइन्स है और यह शोर्ट साइन्स भी है। सिर्फ नया करार, समझ गए सभी? नया करार, जो पिछले, पहले के पूर्व अभ्यास की वजह से धक्का लगने पर उत्पन्न होते हैं। खुद के शुद्धात्मा का भान रहना चाहिए! तो बहुत हो गया।

द्वेष ही जननी है राग की

सत्संग किसे कहते हैं? कुसंग में से निकलना ही सत्संग कहलाता है। हाँ, फिर चाहे कहीं भी बैठा हो न! यदि कुसंग में से निकल गया तो वह सत्संग है। और अगर मंदिर में बैठा है लेकिन कुसंग में से नहीं निकला तो सत्संग नहीं कहलाएगा।

जहाँ कुसंग है, वहाँ पर क्या भगवान द्वेष करते हैं? तब तो फिर वहाँ पर भगवान द्वेष करते कि, 'यह तो कुसंग में से निकलता ही नहीं?' वह यदि द्वेष करने जैसी चीज़ होती तब तो महावीर

भगवान कहते न कि 'भाई, राग मत करना लेकिन इन लोगों के प्रति द्वेष तो करना?!' शराबी, व्यभिचारी लोगों के प्रति इन सब के प्रति द्वेष रखना, भगवान ऐसा कहते लेकिन उन्होंने ऐसा क्यों नहीं कहा?

प्रश्नकर्ता : उस चीज़ पर राग मत करना तो फिर द्वेष नहीं होगा।

दादाश्री : द्वेष को ही छोड़ना है। राग को छोड़ना ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : द्वेष छोड़ने से राग चला जाएगा?

दादाश्री : राग की तो चिंता ही मत करना। भगवान ने कहा है कि वीतद्वेष बन जा। उसके बाद अपने आप ही वीतराग बन जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लोग ऐसा कहते हैं कि जहाँ पर राग अधिक होता है वहीं पर अधिक द्वेष हो जाता है।

दादाश्री : नहीं। द्वेष है इसलिए राग उत्पन्न होता है उसे। यदि मुझे किसी पर द्वेष होगा तो राग उत्पन्न होगा। मुझे द्वेष नहीं होता है, फिर मुझे राग कैसे उत्पन्न होगा? अत: द्वेष में से राग उत्पन्न हुआ है। इसमें द्वेष कॉज़ेज़ है और राग परिणाम है। अत: ऐसा कहते हैं कि 'तू परिणाम की चिंता मत कर, कॉज़ेज़ की चिंता कर'। इतनी सूक्ष्म बात समझी नहीं जा सकती न? यह बहुत सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म बात है!

प्रश्नकर्ता : द्वेष कॉज़ है और राग परिणाम, ऐसा किस तरह से है?

दादाश्री : हाँ, द्वेष कॉज़ेज़ हैं और राग परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि राग व द्वेष साथ में ही रहते हैं। जहाँ पर राग हो, वहाँ पर द्वेष होता ही है।

दादाश्री : नहीं! द्वेष होता है और द्वेष के रिऐक्शन में राग होता है। यदि ज़रा सा भी द्वेष न हो तो राग उत्पन्न ही नहीं होगा।

पहले द्वेष, सूक्ष्म में

द्वेष के आधार पर ही यह खड़ा है। इसका फाउन्डेशन द्वेष ही

है। अत: जब हम ज्ञान देते हैं तब द्वेष चला जाता है। उसके बाद चीज़ों की तरफ आकर्षण रहता है। वह भी व्यवहारिक आकर्षण। आकर्षण निश्चय से नहीं! लेकिन उसके बाद वीतराग हो सकते हैं। वीतद्वेष हो जाने के बहुत समय बाद वीतराग बन सकते हैं। पहले वीतद्वेष बन जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : द्वेष के बजाय राग को छोड़ना मुश्किल है।

दादाश्री : नहीं, राग को छोड़ना सब से आसान है। द्वेष जाना सब से मुश्किल है। पहले द्वेष नहीं जाता, इसीलिए यह राग नहीं जाता। राग तो बेचारा, जब द्वेष चला जाएगा न, तो राग भी चला जाएगा।

अब वेदांत मार्ग के सब से बड़े बुद्धिशाली, कबीर साहब! उन्होंने भी कहा है, 'भूख लगे तब कुछ नहीं सूझे।' ज्ञान-ध्यान सब रोटी में चला जाता है, 'कहत कबीर सुनो भई साधु, आग लगो ये पोठी में।'

जबकि वीतरागों ने 'आग लगो इस पोठी में' नहीं कहा। उन्होंने ज्ञान से पता लगाया इसका, ज्ञान से पृथक्करण किया और इनको ऐसा ही लगा कि, 'यह मेरी ही पोठी है। अत: उसे यहीं से जला दो न।' जबकि वीतरागों ने पृथक्करण किया कि मैं अलग और यह अलग, 'आहारी आहार करता है, मैं तो निराहारी हूँ।' तो वीतरागों ने फिर ऐसी खोज की। उसके बाद उन्होंने पोठी पर द्वेष नहीं किया जबकि वे द्वेष करते हैं न! 'आग लगो इस पोठी में', वह क्या कम द्वेष है? पोठी को जला दे! किसी ने अभी तक जलाया है? कहते ज़रूर है लेकिन जलाते हैं क्या?

तो इस दुनिया में पहला द्वेष किसमें से आता है कि अगर कोई इंसान यहाँ से जंगल में भाग गया, वहाँ पर फिर भूख लगे तो उस समय बेचैन हो जाता है और बेचैनी में द्वेष ही है, राग नहीं है। जब भूख लगे, उस समय यदि उसे सोना-वोना दिखाया जाए तो क्या उसे उस पर राग होगा? उसे द्वेष ही रहेगा। अत: इस संसार की शुरुआत द्वेष से हुई है। और द्वेष की शुरुआत होने से यह फाउन्डेशन खड़ा है।

और राग में पसंद खुद की

प्रश्नकर्ता : वीतराग किस तरह से हुआ जा सकता है?

दादाश्री : वीतराग अपने आप ही हो जाते हैं। वीतराग होने के लिए कुछ करना नहीं है। वीतद्वेष होना सब से मुश्किल काम है।

प्रश्नकर्ता : आपने उस दिन कहा था न कि द्वेष की वजह से ही राग है।

दादाश्री : हाँ, द्वेष में से ही सारा राग है। कड़वा खाने के बाद ज़रा यों ही दूसरा कुछ खाएँ तो उस चीज़ पर हमें राग हो जाता है! उसे खाने से कड़वाहट ज़रा कम हो जाती है न? और अगर यों ही खा लिया होता तो राग नहीं होता। अत: द्वेष में से ही राग उत्पन्न हुआ है। यानी पहले द्वेष जाता है और बाद में राग जाता है। राग अर्थात् पसंद की चीज़ है और द्वेष कुदरती है।

मान लो अगर कोई एक बड़ा राजा है, बहुत ही सुखी है। किसी पर राग-द्वेष नहीं करता, पूरी तरह से न्यायी है। ऐसे सच्चाई के व्रत वाला है कि 'मुझे किसी का कुछ भी नहीं लेना है।' झूठ नहीं बोलता। लेकिन अगर वह जंगल में जाए और रास्ता भटक जाए और तब उसे भूख लगे तो उस समय क्या उसे राग होगा? भूख लगने पर क्या होगा? दु:ख होगा और वेदना होगी न? अब भूख लगने पर वह वहाँ क्या करेगा? किसी भी तरह, झूठ बोलकर या चोरी करके कुछ खा लेगा। खाएगा या नहीं खाएगा? और किसी गरीब के बेटे की जूठी रोटी पड़ी हो तो वह भी खा लेगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : खा लेगा। क्योंकि उसकी भूख जागी है।

दादाश्री : क्योंकि उसे अंदर जो दु:ख हो रहा है, वह द्वेष है। जब पेट में इतना डालता है तब जाकर द्वेष शांत होता है। झूठ बोलकर हम किसी का कुछ ले आएँ और अगर कोई वह छीन ले तो उस पर द्वेष होगा या राग?

प्रश्नकर्ता : द्वेष होगा।

दादाश्री : अत: इन सब का कारण द्वेष है। इन पाँच इन्द्रियों की बिगिनिंग का कारण द्वेष है और फिर राग कब होता है? भले ही वह चोरी करके लाए लेकिन एक तरफ रोटी हो और दूसरी तरफ वेढ़मी (गुजराती व्यंजन) हो तो तुरंत कहेगा, वेढ़मी खाऊँगा! तो उस राग में पसंदगी है न? लेकिन मूलत: तो द्वेष होता है न? मूलत: द्वेष होता है, उसके बाद राग आता है। अत: राग तो एक तरह से अपने शौक की चीज़ है। राग तो सरप्लस हो जाने के बाद होता है लेकिन जो मुख्य ज़रूरतें हैं, उनके लिए तो द्वेष ही होता है। नेसेसिटी में कोई कमी आ जाए तो द्वेष होता है। अगर कोई वह रोटी ले ले तो उस समय उस पर उसे कितना द्वेष होगा? अत: राग निकल सकता है। राग से कोई परेशानी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लोग ऐसा कहते हैं, राग पर ही पूरा संसार खड़ा है।

दादाश्री : अपना अक्रम विज्ञान क्या कहता है कि द्वेष की नींव पर ही यह संसार खड़ा है। जिसकी वह नींव टूट जाएगी, उसका राग अपने आप ही चला जाएगा। वह राग, चाय का राग होता है न! और अगर उससे पहले जलेबी खिला दी जाए तो?

प्रश्नकर्ता : चाय फीकी लगेगी।

दादाश्री : चाय के प्रति राग कम हो जाएगा। जब यह ज्ञान देते हैं न, तब ज्ञान से जो सुख उत्पन्न होता है, उससे बाकी के सभी सुख फीके लगने लगते हैं। उससे राग खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह अनुभव सिद्ध चीज़ है।

दादाश्री : हाँ, अनुभव सिद्ध!

चार कषाय ही हैं द्वेष

जितना-जितना अच्छा लगता है वह सब राग कहलाता है और जो अच्छा नहीं लगता, वह द्वेष कहलाता है। क्या राग बहुत पसंद

है? आर्त और रौद्रध्यान? तो फिर? राग कैसे कह रहे हो? तो फिर जो द्वेष है वह पसंद है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं पसंद।

दादाश्री : राग और द्वेष में से गुनहगार कौन है, वह ढूँढ निकालो। गुनहगार नहीं मिलते हैं इसीलिए तो पूरा जगत् लटक गया है।

इसमें मसाले-वसाले डालकर पिलाया जाए, तब अगर मुझे राग हो जाए तो उसमें हर्ज नहीं है। अगर यह फिर से ज़रा याद आए तो भी हर्ज नहीं है लेकिन अगर कोई कड़वा दे और उसे पीते समय द्वेष हो जाए तो परेशानी है। यदि राग हो जाए और तुझे याद आए तो उसमें हर्ज नहीं है। फिर से यह रस पी जाएगा। तीसरी बार आएगा तो तीसरी बार पी जाएगा लेकिन इसका अंत है। जबकि द्वेष अनंत है। उसका अंत ही नहीं है जबकि यह अंत वाला है।

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में भी ऐसा कहा गया है कि 'ममता छोड़ो। ममता छोड़नी है।' ममता छोड़ने का मतलब पहले राग छोड़ने की बात आती है न?

दादाश्री : ममता की तो यहाँ पर बात ही नहीं है। अपने यहाँ ममता शब्द की बात ही नहीं है। वीतद्वेष क्या है? 'ममता खत्म होने के बाद द्वेष जाता है, नहीं तो नहीं जा सकता', यहाँ पर वह बात है ही नहीं। यह तो बाहर की बात हुई।

प्रश्नकर्ता : बाहर की ही बात है।

दादाश्री : लेकिन वह बात यहाँ पर काम नहीं आएगी न? अपने यहाँ पर तो वीतद्वेष बन जाते हैं। पहले वीतद्वेष बन चुके हैं न? वीतराग नहीं बनाया है। वीतराग नहीं बनाना है, वीतराग तो होते जाओगे। बीज निकाल दिया है मैंने, बीज खत्म हो गया।

अगर समझ में न आए तो यह ऐसी बात है कि बारह-बारह महीने तक लोगों को समझ में न आए। बारह महीने नहीं, लाख सालों तक भी समझ में न आए, ऐसी बात है।

प्रश्नकर्ता : दादा, अब दूसरी बात पूछता हूँ। आपने जो द्वेष कहा है, ये राग और द्वेष दो शब्द हैं। राग में लोभ और माया आते हैं और द्वेष में मान और क्रोध आते हैं तो...

दादाश्री : आप ये सब जो बातें कर रहे हैं, वे सभी बाहर की बातें हैं। उसका और इसका लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में जो लिखा है, उसकी बात कर रहा हूँ।

दादाश्री : शास्त्र तो सही हैं, लेकिन वह बाहर की बात है। बाहर की बात अर्थात् स्थूल बातें, लौकिक बातें हैं जबकि यह बात अलौकिक है।

क्रोध-मान-माया-लोभ ही द्वेष हैं। वे चारों ही द्वेष हैं।

प्रश्नकर्ता : शास्त्र में दो को कहा गया है।

दादाश्री : उन्होंने तो दो को ही कहा है लेकिन आखिर में ये सब द्वेष ही हैं क्योंकि जो आत्मा को पीड़ित करते हैं, वे सभी कषाय कहलाते हैं। जब तक वे रहेंगे तब तक यह सब होता रहेगा। अपने यहाँ पर आपको वीतद्वेष बना दिया है। आपको इतना ही देख लेना है कि क्या ऐसा लगता है कि हम वीतद्वेष हो गए हैं?

प्रश्नकर्ता : लगता है।

दादाश्री : फिर वीतराग तो परिणाम है। अत: उसके लिए कुछ करना नहीं पड़ेगा। कॉज़ेज़ निकाल दिए हैं न! मूल कॉज़ेज़ खत्म कर दिए।

अब बात इतनी सूक्ष्म है और ऐसी है कि कई सालों तक समझ में न आए! यह बात बुद्धि गम्य नहीं है, यह तो ज्ञान गम्य बात निकल गई। देखो निकल गई न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह सही हकीकत है, हर एक का ऐसा अनुभव है कि अब द्वेष नहीं होता, कषायों पर...

दादाश्री : किसी को नाम मात्र को भी द्वेष नहीं होता। सिर्फ इतना है कि आम ज़रूर भाते हैं, यह सब अच्छा लगता है, मीठा लगता है सब। जब कड़वा हो न तो कड़वा ले ज़रूर लेते हैं लेकिन द्वेष नहीं होता। समभाव से *निकाल* कर देते हैं, हल ले आते हैं। अतः वीतद्वेष बना दिया, उसके बाद बचा वीतराग।

भूख का मूल कारण द्वेष

वीतरागी को कोई कर्तापन नहीं होता। अपने आप ही होता रहता है क्योंकि द्वेष अर्थात् इंसान राग से खाता है या द्वेष से खाता है? इंसान जब खाने जाता है तो वह राग से खाता है या द्वेष से?

प्रश्नकर्ता : राग से खाता है!

दादाश्री : ना, द्वेष से खाता है।

प्रश्नकर्ता : वह समझाइए दादा, वह ठीक से समझ में नहीं आया।

दादाश्री : जब तक उसे भूख नहीं लगती न, तब तक बैठा रहता है बेचारा। जब भूख लगती है न, तब अंदर दुःख होता है, दुःख होने पर द्वेष करता है न! भूख लगती है, वही द्वेष का कारण है। प्यास लगती है, वह द्वेष का कारण है। उसे द्वेष होता है, अगर भूख ही नहीं लगती तो? विषय से संबंधित भूख नहीं लगे, देह से संबंधित भूख नहीं लगे, और कोई भूख नहीं लगे तो?

प्रश्नकर्ता : तो इंसान वीतराग हो जाएगा।

दादाश्री : वीतराग ही है न! यह तो भूख लगती है। कितने प्रकार की भूख लगती है उसे?

प्रश्नकर्ता : अनेक प्रकार की भूख है न!

दादाश्री : नहीं, यों ही! भूख नहीं लगे इसलिए आज घूमने नहीं जाना है, आज सोते रहना है। इसके बावजूद भी भूख लगे बगैर रहेगी क्या? छोड़ेगी? एक दिन या दो दिन?

प्रश्नकर्ता : लगेगी।

दादाश्री : फिर अंदर क्या होता है उसे?

प्रश्नकर्ता : रोष होता है।

दादाश्री : उससे दु:ख होता है, वेदना होती है। जब वेदना होती है उसका मतलब कि द्वेष परिणाम उत्पन्न हुए। जब द्वेष परिणाम उत्पन्न होते हैं तो जो कोई आए उसे गालियाँ देता है। हाँ, भूख लगने पर गालियाँ देता है, उसे काट खाता है। अगर कोई खाना लेकर जा रहा हो और उसे नहीं दे तो काट खाता है। तो भूख में ऐसा, प्यास में ऐसा, विषय में ऐसा! विषय एक प्रकार की भूख है। अगर सिनेमा में नहीं जाने दो, उसे भूख लगी हो और नहीं जाने दो तब क्या होगा? द्वेष करेगा या राग?

प्रश्नकर्ता : द्वेष करेगा।

दादाश्री : तो आज द्वेष से ही सारा जगत् खड़ा है। राग को तो बेचारे को कोई परेशानी ही नहीं है। साथ में सात स्त्रियाँ लेकर घूम न यदि तुझे द्वेष नहीं होता है तो!

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा है कि जिसे बहुत भूख लगती है, उसे बहुत द्वेष होता है?

दादाश्री : हाँ, हाँ। कम भूख लगे तो कम द्वेष होता है। जिसने पिछले जन्म में ब्रह्मचर्य के भाव का पालन किया हो, वैसा भाव चार्ज किया हो तो, उसे इस जन्म में ब्रह्मचर्य का उदय आता है। उसका उदय आने के बाद उसे वह भूख नहीं लगती। यानी उसका उस तरफ का द्वेष चला गया। तो उस तरफ से वह वीतद्वेष हो गया। उसी प्रकार जिस-जिस चीज़ की भूख नहीं लगती, उसमें वीतद्वेष हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : जब तक शरीर है, तब तक भूख तो लगेगी ही।

दादाश्री : नहीं! लेकिन ऐसा है कि जिसने ब्रह्मचर्य का भाव

किया हो उसकी एक भूख तो उतनी कम हो जाती है। बाकी सब प्रकार की भूख तो लगेंगी ही।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दूसरा जो हमें अनाज खाने की भूख है, वह भूख तो लगेगी ही तो फिर द्वेष तो जाएगा ही नहीं न कभी भी?

दादाश्री : अर्थात् द्वेष जाएगा ही नहीं इसीलिए हमने वीतराग विज्ञान देकर आपको वीतद्वेष बना दिया है।

प्रश्नकर्ता : भूख तो रोज़ लगती है फिर ऐसा कैसे कहा जा सकता है कि वीतद्वेष बन गए?

दादाश्री : वह तो अभी जब आप साइन्स को समझोगे तब उस दिन! अभी तो समझना बाकी है न? ये सभी समझकर बैठे हैं कि किसे भूख लगी है और किसे नहीं, वह सब जानते हैं। किसे भूख लगी है, आप सभी लोग वह समझकर बैठे हो न? जबकि वे (जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया) तो ऐसा ही समझते हैं कि 'मुझे भूख लगी है'।

यदि यह भूख नहीं लगती, प्यास नहीं लगती, तो ये साधु उपाश्रय से बाहर ही नहीं निकलते। राग तो बाद में पैदा हुआ है। राग अर्थात् यह अच्छा और यह बुरा। वह बाद का भाग है। मूल रूप से सबकुछ यहीं से उत्पन्न हुआ है। यदि उस जड़ को पकड़ लेंगे तो काम ही हो जाएगा न!

अत: आपको वीतद्वेष बना दिया है और मेरे साथ बैठ-बैठकर वीतराग बन जाना है। जितने समय तक बैठ पाओ, उतना समय। जिससे जितना लाभ लिया जा सके, उतना। और एकावतारी है, दो अवतारी, तीन अवतारी, पाँच अवतारी, बहुत हुआ तो पंद्रह अवतार होंगे लेकिन और कोई नुकसान तो नहीं होगा न! और उसका (ज्ञान का) सुख बरतता है न हमें!

सुख बरतता है तभी तो सब यहाँ पर आते हैं न, रोज़! यहाँ मुंबई में छ:-छ:, सात-सात घंटे कौन इतना समय बिगाड़ेगा? कोई

चार घंटे, कोई तीन घंटे, कोई दो घंटे, कोई-कोई सात-आठ घंटे। छः घंटे के लिए आने वाले लोग भी हैं न यहाँ पर?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अतः द्वेष तो... इस जीवन में जो कोई भी विषय है न, वे विषय दुःख देते हैं, उस कारण उसे द्वेष होता है। अतः द्वेष से प्रयत्न करके, कोई उसे बुझाने का प्रयत्न करता है। अच्छा-बुरा बाद में सीखा कि यह आम रत्नागिरी वाला है और यह वह वाला है। राग तो बहुत समय बाद सीखा। राग तो था ही नहीं। इस रत्नागिरी आम की ज़रूरत कब पड़ती है? यदि दूसरे आम ही मिलें और ये आम मिलते ही नहीं हों, तब?

इन इंसानों को जो हाजतें हैं न, वे सभी द्वेष वाली हैं। राग बाद में उत्पन्न हुआ है। फिर तो छाँटने लगा कि यह इससे अच्छा है, उससे अच्छा यह है, उससे अच्छा यह है, उसके बजाय यह अच्छा है, लेकिन जब भूख लगती है न, तब क्या वह अच्छा-बुरा कहता है?

वह सब है अशाता वेदनीय

हमें भूख लगती है, तो वह जो भूख होती है, उसे अशाता वेदनीय कहा जाता है। अब बाहर से कोई अशाता वेदनीय नहीं करता। अशाता वेदनीय अर्थात् हमें अंदर द्वेष होता रहता है, नापसंदगी होने लगती है और जो कोई बीच में आए उसे धमका देता है। अब अशाता वेदनीय कुदरती रूप से होती है, किसी ने की नहीं है। देह धारण करने का दंड है, अतः द्वेष उत्पन्न होता है उससे। प्यास वगैरह सब अशाता वेदनीय की वजह से लगती है। अतः जहाँ-जहाँ 'लगती है' शब्द आता है न, वह सब अशाता वेदनीय है। प्यास लगती है, भूख लगती है, नींद आती है, थकान लगती है, लगती है, लगती है अर्थात् जो सुलगती है वह सब अशाता वेदनीय है। फिर नींद भी लग जाती है न? ये सब अशाता वेदनीय हैं और इसीलिए द्वेष होता है और द्वेष में से फिर अशाता वेदनीय की वजह से खाने-पीने का ढूँढता है। फिर, जो भी मिलता है, वही खा लेता है, उसे शांत करने के लिए।

और उसके बाद जब पसंद करता है, वहाँ से राग होने की शुरुआत हुई। अत: राग तो, एक-एक चीज़ हमारी ही पसंद है कि यह या यह या यह। जबकि द्वेष तो अनिवार्य है। भाई, खाए बगैर तो चलेगा ही नहीं न! तो क्या सोए बगैर भी नहीं चलेगा! कोई हमें सोने से रोके तो उसके प्रति क्या होता है हमें? राग होता है या द्वेष होता है?

प्रश्नकर्ता : एकदम द्वेष होता है।

दादाश्री : जब भूख लगी हो और उसे कोई रोके तब क्या होता है? राग अर्थात् खुद के मन मुताबिक, वह खुद का स्वतंत्र भाग है। द्वेष में स्वतंत्र है ही नहीं। इस बारे में शास्त्र पढ़े या बारीकी से सोचे?

प्रश्नकर्ता : दादा, बारीकी से कैसे सोच पाएगा?

दादाश्री : शास्त्रों में पढ़ते हैं। जो शास्त्र लिखे गए हैं, उनमें तो सभी के लिए एक साथ दवाई रखी गई है। जिसे जो अनुकूल आए वह दवाई ले लेना। बेकार ही पत्नी को छोड़कर भाग मत जाना। जिसे कर्म का उदय आए, वही छोड़ना। कर्म का उदय नहीं हो तो फिर वैसा। (त्यागी) कर्म के उदय वाले को तो यदि यहाँ पर सांसारिक बनाने जाएँगे तो भाग जाएगा। तीसरे ही दिन भाग जाएगा।

द्वेष ही पहले, बाद में राग

यदि खुद की स्त्री पर ज़रा सा भी द्वेष नहीं रहे न, तो स्त्री के प्रति राग होगा ही नहीं, ऐसा नियम है। अत: मजबूरन स्त्री पर राग करता है बेचारा। यह तो ऐसा है कि द्वेष होता है, इसलिए वह द्वेष ही उसे धक्का मारकर राग में डाल देता है। यदि द्वेष नहीं होता न तो स्त्री पर राग होता ही नहीं। वह ज़रा सा सोचने के बाद समझ जाता कि यह राग करने जैसी चीज़ है ही नहीं। भरत राजा की तेरह सौ रानियाँ थीं लेकिन राग हुआ होगा पर द्वेष नहीं हुआ होगा उन्हें! वीतद्वेष हो चुके थे भरत राजा!

यह तो शादी करके एक स्त्री को लाया और अगर वह काली हो तब दूसरी किसी गोरी स्त्री पर उसे राग हो ही जाता है। अरे तेरी

पत्नी है न! तब कहता है, 'लेकिन गोरी नहीं है न!' अगर गोरी स्त्रियाँ बिल्कुल होती ही नहीं तो राग होता क्या उसे?

प्रश्नकर्ता : नहीं होता।

दादाश्री : बस, मुख्य कारण द्वेष ही है। स्त्री की ज़रूरत है, ये इन्द्रियाँ ऐसी हैं कि जब तक ज्ञान नहीं हो जाए तो उसे स्त्री की सभी चीज़ों की ज़रूरत रहती है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान होने के बाद ज़रूरत नहीं रहती?

दादाश्री : ज्ञान होने के बाद में फिर ज़रूरत नहीं रहती। अत: सिर्फ स्त्री के प्रति होने वाला विषय-विकार रुक जाता है। बाकी सब, खाने-पीने की तो ज़रूरत पड़ती है अंत तक, देह जीवित है तब तक।

बच्चे पूर्व जन्म के द्वेष का परिणाम

यदि तुझे पत्नी व बच्चों के प्रति द्वेष नहीं हो तो राग उत्पन्न ही नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : वह किस प्रकार से? जो चीज़ पसंद हो, जिस पर राग हो, उसके प्रति द्वेष हो सकता है?

दादाश्री : द्वेष ही है, तभी राग होता है न! द्वेष के बिना राग नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा है कि पहले द्वेष होता है?

दादाश्री : द्वेष के बिना राग हो ही नहीं सकता। राग में से द्वेष और द्वेष में से राग। बच्चे को जब दवाई पिलाने लगें तब अगर वह यों फूँक मारकर हमारी आँखों में डाल दे तो?

प्रश्नकर्ता : तो द्वेष होता है।

दादाश्री : तब द्वेष होता है। अत: पहले अगर द्वेष चला जाए तो फिर राग चला जाएगा। अभी आपका द्वेष चला गया है। किसी पर द्वेष नहीं होता लेकिन राग तो रहेगा लेकिन वह *निकाली* राग है। यहाँ पर महात्माओं को तो *निकाली* द्वेष भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मुझे अभी तक यह ठीक से समझ में नहीं आया कि द्वेष में से राग होता है। बच्चे को देखकर सब से पहले तो राग ही होता है न हमें।

दादाश्री : जहाँ द्वेष हुआ हो वहीं पर राग होता है, नहीं तो राग हो ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : पूर्व जन्म के किसी कर्म के कारण द्वेष हुआ होगा?

दादाश्री : उसी के परिणाम स्वरूप यह राग होता है। उस पर बहुत ही द्वेष रहा होगा न तो इस बार बेटे के यहाँ बेटा बनकर गोदी में खेलने आता है और फिर हम उसे चूमते हैं। 'अरे भाई, यह तो पसंद नहीं था न, तो क्यों चूम रहा है?'

राग में से द्वेष, द्वेष में से राग

क्लेश का कारण द्वेष है। अतिशय राग हो जाए तब नापसंदगी हो जाती है। कुछ हद तक का परिचय राग में परिणमित होता है और 'रिज पोइन्ट' आने के बाद जब आगे बढ़ते हैं तो द्वेष में परिणमित होता है। जब द्वेष होता है, उसी समय राग के कारणों का सेवन होता है और इन सभी की जड़ में जो राग-द्वेष हैं, वे 'इफेक्ट' हैं और जो अज्ञान है, वह 'कॉज़' है!

प्रश्नकर्ता : एक जगह आप्तवाणी में पढ़ा है कि 'राग से द्वेष के बीज डलते हैं और द्वेष से राग के बीज डलते हैं', यह ज़रा समझाइए। ऐसा कैसे होता है?

दादाश्री : क्यों? नहीं तो क्या लगता है आपको?

प्रश्नकर्ता : द्वेष में से राग, बात समझ में आती है लेकिन राग में से द्वेष समझ में नहीं आ रहा।

दादाश्री : क्या समझ में आया 'द्वेष में से राग' में?

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा कहा था कि मुझे इनका चेहरा भी नहीं देखना है और फिर वही पुत्र के रूप में पैदा होता है।

दादाश्री : तब चूमता रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसका अर्थ यही हुआ न कि द्वेष में से राग उत्पन्न हुआ?

दादाश्री : दोनों आमने-सामने ही हैं। राग, द्वेष को उत्पन्न करता है और द्वेष, राग को उत्पन्न करता है। वीतरागों को ये स्पर्श नहीं करते।

प्रश्नकर्ता : राग में से द्वेष कैसे उत्पन्न होता है? वह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : आपको बहुत राग हो लेकिन फिर भी जब उसकी अति हो जाती है तब द्वेष होने लगता है।

प्रश्नकर्ता : 'अति होने से द्वेष होता है' यह एक सिद्धांत हुआ लेकिन उस सिद्धांत को उदाहरण देकर समझाइए न।

दादाश्री : रोज़ घर में कलह है, उसका कारण यही है। उसका कारण राग है। उसकी जब अति हो जाती है तब द्वेष होता है। राग करने के परिणाम स्वरूप हर रोज़ यह द्वेष होता है।

प्रश्नकर्ता : एक स्त्री को अपने पति के प्रति बहुत ही राग हो तो फिर उनके बीच तकरार होगी?

दादाश्री : हाँ, फिर यदि अगर वह कभी कहीं बाहर जाए और नहीं आ पाए तो चिढ़ती रहेगी। वीतराग को कुछ भी नहीं होता। राग वालों के बीच झगड़े होते ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : बहुत राग हो तो होते हैं, वह बात सही है।

दादाश्री : कम हो तब भी होता है यह तो।

प्रश्नकर्ता : अगर कम है तो थोड़ा बहुत होता है जबकि उसमें ज़्यादा होता है।

दादाश्री : लेकिन होता ज़रूर है। बच्चे पर बहुत राग था, इकलौता बेटा था, जब उसके पिता जी छः महीने बाद मुंबई से आए

तो बेटा पापा जी, पापा जी कहने लगा तो उन्होंने उसे एकदम गोद में उठा लिया। उठाकर उसे ऐसा दबाया कि बच्चा बहुत दब गया। तब उसने काट लिया। अतिरेक से बिगड़ जाता है सभी कुछ। सही अनुपात सीख लेना चाहिए। सही अनुपात में (बेलेन्स) करते-करते वीतराग हो जाते हैं। धीरे-धीरे अनुपात में लाते-लाते वीतराग बन सकते हैं। बच्चा काट लेगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ, काट लेगा।

दादाश्री : वह सही था या बच्चा सही था?

प्रश्नकर्ता : बच्चे ने सही ही किया। हाँ, ठीक है।

दादाश्री : फिर भी ये बाप बार-बार दबाते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : बहुत राग किया तो उसमें उस बच्चे को द्वेष हो गया।

दादाश्री : नहीं, बहुत राग हुआ इसलिए द्वेष हुआ। फिर जब उसने काट खाया तो पिता को द्वेष हो गया। बेटे को उतारकर मारा। तब भी वह बाप समझा नहीं। बेटे को ज़्यादा दबाया। वह तो ऐसा समझा कि मैंने प्रेम किया, फिर भी इसने काट खाया!

ऐसी है यह सारी दुनिया, अंधे लोग अंधेरे में चल रहे हैं लेकिन क्या हो सकता है? अत: मैंने जो चश्मे दिए हैं, उन्हें पहनकर चलना आराम से, मज़े से। चश्मे तो अच्छे हैं, ठोकर नहीं लगती न?

दुनिया को जो बातें कभी भी स्पष्ट नहीं हो सकती थीं, वैसा स्पष्टीकरण दिया है मैंने। छोटी से छोटी बात का।

अक्रम विज्ञान ने बनाया वीतद्वेष

सिर्फ 'वीतराग' ही कहा गया है। अपने यहाँ पर ज्ञान देते ही सब से पहले द्वेष चला जाता है, हर किसी का। कोई गालियाँ दे तो भी उसके साथ समभाव से *निकाल* करता है लेकिन द्वेष नहीं करता। क्या इनके साथ आपको ऐसा कुछ अनुभव हुआ है? पूरा-पूरा अनुभव हुआ है।

प्रश्नकर्ता : निरंतर अनुभव होता है।

दादाश्री : गालियाँ देते हैं तब भी! वर्ना गाली का तो क्या परिणाम आता है? वह गालियाँ दे तब क्या होता है? द्वेष होता है या राग?

प्रश्नकर्ता : द्वेष ही होता है। इस ज्ञान के बाद तो जहाँ पर द्वेष करने योग्य जगह हो वहाँ पर भी अब द्वेष नहीं होता।

दादाश्री : द्वेष करने योग्य व्यक्ति के घर पर छोड़ दिया जाए तब भी अगर द्वेष नहीं हो, तब समझना कि यह वीतराग बनने लायक हो गया!

द्वेष करने की जगह पर द्वेष होने लगे तो, वह तो मीनिंगलेस चीज़ है। आपको अब पहले जैसा द्वेष नहीं होता न किसी जगह पर?

प्रश्नकर्ता : एक जगह पर होता है।

दादाश्री : एक जगह में हर्ज नहीं। एक जगह हो तब तो वह मुझे सौंप देना। लेकिन बाकी सभी जगह पर, पूरी दुनिया में किसी भी जगह पर द्वेष नहीं होता न? एक जगह पर आपको जो होता है, वह तो आपकी दृष्टि की भूल है, समझने में भूल है। वास्तव में तो वहाँ पर भी नहीं होता और बाकी जगहों पर नहीं होता है न? अत: किसी भी जगह पर द्वेष नहीं होता है न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कहीं पर भी नहीं।

दादाश्री : मोटर में आपके साथ चार लोग बैठे हुए हों और उनमें से एक भाई आपसे कहे कि, 'पाँच मिनट दर्शन करके आता हूँ', तो आप चार लोग बैठे-बैठे, 'यह गया', उसे गालियाँ देते हो? क्या करते हो आप?

प्रश्नकर्ता : वह तो जो संयोग आया, उसे देखना है। अत: उसमें द्वेष तो होगा ही नहीं न हमें।

दादाश्री : नहीं, लेकिन आप क्या करोगे? समभाव से *निकाल* करोगे? फिर उन पर द्वेष नहीं करोगे न? आधा-पौना घंटा हो जाए तब भी?

प्रश्नकर्ता : हाँ, तब भी द्वेष नहीं होगा।

दादाश्री : वही! आपको वीतद्वेष बना दिया है।

अत: मैंने आपको कौन से ज्ञान पर रख दिया है? आपका द्वेष बिल्कुल निकल गया है। अर्थात् मैंने आपके राग को नहीं रोका है। मैंने आपसे कहा है, 'हाफूस के आम, रस-रोटी वगैरह सब खाना-पीना। कपड़े पहनना, सिनेमा देखने जाना!' क्यों कहा है? आपको उस पर बैर नहीं है इसलिए। मैंने आपका द्वेष बंद करवा दिया है इसलिए पूरे दिन आप संयम में रहते हो। इस द्वेष के कारण ही सारा असंयम है। पूरे दिन राग नहीं रह सकता इंसान को, द्वेष ही रहता है!

अत: ऐसा है न, यदि द्वेष का परिणाम कम हो जाए न, तो राग रहने में हर्ज नहीं है। अभी आपको वीतद्वेष बनाने के बाद छोड़ दिया है। फिर भी आपको कोई वीतराग नहीं कहेगा। फिर भी आपको कहाँ तक की प्राप्ति हो गई है? वीतद्वेष हो गए हो। आपके आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद हो गए हैं। ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान, द्वेष हैं। आर्तध्यान और रौद्रध्यान द्वेष कहलाते हैं या राग कहलाते हैं? द्वेष हैं ये तो। जहाँ पर राग है, वहाँ पर क्या रौद्रध्यान हो सकता है? जब राग होता है उस समय रौद्रध्यान नहीं हो सकता। जहाँ द्वेष है, वहीं पर रौद्रध्यान होता है।

वीतद्वेष क्यों नहीं?

वीतद्वेष हो गए हो लेकिन वीतराग नहीं हुए हो न! उसके बाद यह राग जाएगा। अब यह राग किस तरह से जाएगा? ऐसा है न, कड़वा छोड़ देते हो और कड़वे पर आप द्वेष छोड़ देते हो लेकिन मीठा छोड़ने में आपको देर लगेगी और उसके प्रति जो राग है, उसे जाने में भी देर लगेगी। कड़वा छोड़ देना हर किसी को आता है और मीठा छोड़ना?

प्रश्नकर्ता : उसमें देर लगती है। ठीक है।

दादाश्री : अब इसीलिए ऐसा कहा है कि कड़वा छूट गया है। वही सब से बड़ा जोखिम था, द्वेष का।

प्रश्नकर्ता : अतः मूलतः द्वेष में से उत्पन्न हुआ है?

दादाश्री : मूलतः द्वेष में से ही उत्पन्न हुआ है यह सब और उससे भी आगे जाएँ तो बैर में से उत्पन्न हुआ है। अतः मैत्री हो जाएगी तब काम होगा, वर्ना जब तक बैर रहेगा, तब तक द्वेष बाँधेगा। चौबीस तीर्थंकरों की इतनी सी, यह एक ही बात अगर समझ जाए तो जगत् का कल्याण हो जाएगा। यही एक बात, चौबीस तीर्थंकरों की कि, 'वीतद्वेष बनो!'

प्रश्नकर्ता : बहुत बड़ी बात है।

दादाश्री : हाँ, बहुत गहरी बात है, कभी-कभी ही ऐसी बात निकल जाती है। वीतद्वेष और वीतराग! वीतद्वेष शब्द तो दुनिया ने सुना ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : और जब जाता है तब भी पहले द्वेष जाता है और उसके बाद राग जाता है।

दादाश्री : हाँ, पहले द्वेष जाता है। पहले द्वेष जाना ही चाहिए। अगर वह नहीं जाएगा तो फिर मोक्ष नहीं होगा। चाहे कितने ही राग खत्म करोगे तो भी कुछ बदलेगा नहीं।

'मैं चंदू हूँ' में राग, तो स्वरूप में द्वेष

'मैं चंदूलाल हूँ' वही आरोपित जगह पर राग है और बाकी सभी जगह पर द्वेष है यानी कि स्वरूप के प्रति द्वेष है, एक ही तरफ राग हो तो उसके दूसरी तरफ सामने वाले कोने पर द्वेष रहता ही है। हम स्वरूप का भान करवाते हैं, शुद्धात्मा का *लक्ष* (जागृति) दे देते हैं इसलिए उसी क्षण वे वीतद्वेष स्थिति में आ जाता है और जैसे-जैसे आगे बढ़ता है वैसे-वैसे वीतराग होता जाता है। वीतराग अर्थात् मूल जगह का, स्वरूप का ज्ञान-दर्शन।

बने वीतद्वेष ज्ञान मिलते ही

प्रश्नकर्ता : ये जो वीतराग हैं, उन्हें राग नहीं होता लेकिन आपके प्रति हमें राग है।

दादाश्री : मेरे प्रति राग रखने में हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए यहाँ आने का मन हो जाता है।

दादाश्री : मेरे प्रति तो राग रहेगा ही।

प्रश्नकर्ता : तो वीतराग का मतलब क्या है?

दादाश्री : वीतराग अर्थात् वास्तव में देखा जाए तो... ऐसा कहना चाहिए कि वीतराग-द्वेष! लेकिन वीतराग क्यों कहते हैं? तो वह इसलिए कि उन्हें जब आत्मा की जागृति होती है, सम्यक् दर्शन होता है, क्षायक सम्यक् दर्शन, उस समय वे वीतद्वेष तो हो ही जाते हैं। हम जब आपको ज्ञान देते हैं न, तब वीतद्वेष अर्थात् आप में से द्वेष नाम की चीज़ निकल जाती है।

द्वेष चला जाता है। अत: क्रोध होने पर वह आपको अच्छा नहीं लगता। किसी के प्रति तिरस्कार होता है तो वह अच्छा नहीं लगता। वह सब, जिसे द्वेष कहा जाता है, जिसे तिरस्कार कहते हैं, वह नहीं होता। अत: वीतद्वेष तो हो चुके हो।

वीतद्वेष के बाद बचा डिस्चार्ज राग

प्रश्नकर्ता : 'राग हो तो बाद में द्वेष होता है। राग लोभ का पर्याय है और सब से अंत में जाता है इसीलिए ऐसा भी हो सकता है कि राग हो लेकिन द्वेष न रहे, लेकिन जहाँ पर राग नहीं है वहाँ पर द्वेष नहीं है। राग मुख्य है, उसका क्षय होने पर संपूर्ण आत्म स्वरूप अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है', यह समझाइए।

दादाश्री : द्वेष का स्वभाव कड़वा है इसलिए कड़वा भाव छूट जाता है और राग मीठा है इसलिए रह जाता है। जो कड़वा है वह

अच्छा नहीं लगता लेकिन अब एक बार घुस गया है तो वह कर भी क्या सकता है? लेकिन जब ज्ञान मिलता है तब या फिर उसकी दृष्टि बदल जाए, आत्म दृष्टि हो जाए तब फिर द्वेष छूट जाता है। आत्म दृष्टि होने से द्वेष खत्म हो जाता है क्योंकि वह कड़वा है। यदि मीठा होता तो खत्म ही नहीं होने देता उसे! अत: राग अंत तक रहता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, आप जब यह ज्ञान देते हैं तब ये जो राग और द्वेष हैं, उनमें से द्वेष तो उसी क्षण खत्म हो जाता है। ऐसा कैसे होता है?

दादाश्री : वह द्वेष पहले ही खत्म हो जाता है क्योंकि पापों का नाश हो जाता है। उसके बाद सिर्फ राग बचता है। वह राग भी धीरे-धीरे कम होता जाता है और वह राग भी डिस्चार्ज भाव से है, चार्ज भाव से नहीं है। धीरे-धीरे-धीरे कम होता जाता है और अंत में वीतराग कहलाता है। जब राग भी चला जाता है तब वीतराग कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यदि राग डिस्चार्ज के रूप में ही है तो फिर द्वेष भी डिस्चार्ज के रूप में रहता है या नहीं?

दादाश्री : नहीं, द्वेष तो चला ही जाता है। अगर द्वेष रहे तो नए कर्म बंधेंगे। जब तक द्वेष रहता है तब तक चिंता होती है। यहाँ तो एक भी चिंता नहीं होती। उसका क्या कारण है कि द्वेष खत्म हो जाता है। पहले ही दिन!

प्रश्नकर्ता : पहले दिन नहीं, उसी क्षण खत्म हो जाता है।

दादाश्री : अत: वह उसी क्षण जितेन्द्रिय जिन बन जाता है। सभी इन्द्रियों को जीत लिया है इसलिए उसी क्षण जितेन्द्रिय जिन बन जाता है अर्थात् वीतद्वेष बन जाता है। सभी इन्द्रियों को जीत लेता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन द्वेष तो डिस्चार्ज भाव से रहेगा या नहीं?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : नहीं रहेगा। यों अनुभव से ऐसा दिखाई देता है कि जिन्हें हम अपना दुश्मन समझते थे उनके प्रति दुश्मनी नहीं रहती।

दादाश्री : रहती ही नहीं। वीतद्वेष हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अपना द्वेष तो चला जाता है लेकिन सामने वाले का द्वेष भी चला जाए, उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करते रहना चाहिए। द्वेष में से राग उत्पन्न हुआ। दोनों के बीच कारण-कार्य का संबंध है। अत: द्वेष नहीं होता। इसलिए सभी कारण बंद हो गए, वीतद्वेष!

प्रश्नकर्ता : फिर दादा, राग तो रहता है। स्त्री है, बच्चे हैं, ऑफिस है, नौकरी-धंधा है तो फिर राग तो रहा न? क्या वह राग डिस्चार्ज कहलाएगा?

दादाश्री : वह राग डिस्चार्ज के रूप में है। वास्तव में चार्ज के रूप में राग कहाँ पर रहता है, जब तक यह भान रहे कि 'मैं चंदू भाई हूँ', तब वास्तव में राग है। लेकिन ऐसा भान हुआ कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो उस क्षण से वास्तविक राग नहीं रहता, डिस्चार्ज के रूप में रहता है।

जिसका अटैक गया वह भगवान बन गया

धर्म तो किसे कहते हैं? किसी भी संयोगों में राग-द्वेष न हो, उसी को धर्म कहते हैं। भले ही राग हो लेकिन द्वेष तो होना ही नहीं चाहिए। जबकि वे तो (जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया) फुंफकारते हैं।

इतना ही देख लेना है कि अटैक नहीं होता न और जब अटैक होने लगे तब मुझ से कह देना कि मुझे अटैक करने के विचार आ रहे हैं। वे विचार भले ही आएँ लेकिन वह तेरा खुद का अटैक नहीं है न? तो कहता है, 'नहीं, नहीं है'। तो फिर कोई बात नहीं।

शास्त्र कहते हैं कि अगर तेरे भाव में अटैक नहीं है तो तू महावीर ही है। जब से मेरे अटैक बंद हो गए, तभी से मैं अपने

आपको महावीर ही मानता था। बस इतना ही कि मैं कहता नहीं था। 'जो भगवान ने बताया है, यह वही चीज़ होगी', मेरे पास अन्य कोई चीज़ ढूँढने को रहा ही नहीं। इस दुनिया में ऐसा व्यक्ति ढूँढ निकालो जिसने अटैक करना बंद कर दिया हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। ज़रा सा यों 'मेरे को', 'हम को' या 'हम का' की वजह से यहाँ से छूट नहीं सकता। 'हम को' टल जाएगा न तो पूरी दुनिया ही टल जाएगी। ऐसा कोई उपदेशक नहीं कि जो अटैक बंद कर सका हो।

राग-द्वेष के *भोगवटों* का अनोखा हिसाब

प्रश्नकर्ता : जिस पर राग हो, वही फिर द्वेष से भुगतना पड़ता है और जिस पर द्वेष है, वही फिर राग से भुगतना पड़ता है। ज़रा इस सूत्र को समझाइए।

दादाश्री : राग कभी भी यों ही तो नहीं हो जाता। राग तो, जब कोई झटका वगैरह लगे तब होता है। किसी मित्र के साथ किसी बात पर अनबन हो जाए, बोलचाल बंद हो जाए तो छः-बारह महीनों तक अगर बोलना बंद रहे तो बहुत राग होने लगता है उसमें और जब वापस उससे बोलना शुरू करते हैं तब वे लोग गले लग जाते हैं। अब द्वेष से बोलना बंद किया था और अब द्वेष में से इतना राग हो गया कि अंत में गले लगकर मित्रता की तो इतनी अधिक एकता हो जाती है कि पूछो मत! इसी प्रकार यह सारी दुनिया चल रही है।

जहाँ आपका हिसाब है वहीं पर आकर्षण होता है। राग किसे कहते हैं कि हम खुश होकर आकर्षण पैदा करते हैं। और यह राग नहीं है। इसका क्या कारण है? आपकी इच्छा नहीं है फिर भी आकर्षण होता है। ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है, होता है।

दादाश्री : तो वह राग नहीं कहलाएगा। राग में तो खुद की इच्छा की वजह से होता है और अब खुद की इच्छा नहीं है। हमने

यह ज्ञान दिया उसके बाद से इन सभी की पत्नियाँ हैं, पर वह बगैर इच्छा के होना चाहिए। जितना आकर्षण है सिर्फ उतना ही!

द्वेष विकर्षण है और राग आकर्षण है। आकर्षण-विकर्षण होते ही रहते हैं, वह *पुद्गल* का स्वभाव है। आत्म स्वभाव वैसा नहीं है।

यह है संपूर्ण विज्ञान

जब से ज्ञानीपुरुष से मिले, तभी से वीतद्वेष बना दिया है। उसके बाद जैसे-जैसे फाइलों का *निकाल* होगा तो वीतराग होते जाओगे और जिसकी सर्वस्व फाइलों का *निकाल* हो गया वह वीतराग हो गया। ऐसे ज्ञानीपुरुष संपूर्ण वीतराग होते हैं। ज़रा एक-दो अंश की कमी रहती है, बाकी संपूर्ण वीतराग!

जैसे-जैसे वीतरागता बढ़ती जाती है, उतनी ही राग-द्वेष रहितता आती जाती है और उतना ही हमें मोक्ष समझ में आता जाता है। पूर्ण दशा उत्पन्न होती जाती है। संपूर्ण वीतरागता, उसी को भगवान कहते हैं।

अपना यह तरीका पूर्णत: वैज्ञानिक है! संपूर्ण विज्ञान है यह तो! पूरा ही विज्ञान है। सताइस सालों से मैं जो कुछ भी कह रहा हूँ वह संपूर्ण विज्ञान है। एक-एक शब्द विज्ञान है। विज्ञान को सिद्धांत कहा जाता है।

[2.4]

प्रशस्त राग

जो कभी भी भूला न जा सके, वह प्रशस्त राग

पहले वीतद्वेष बन जाते हैं उसके बाद वीतराग बनते हैं। वीतद्वेष उत्पन्न होने के बाद सिर्फ राग बचता है। राग बाद में ही जाता है, ऐसा उसका स्वभाव है क्योंकि जब आखिर में *पुद्गल* में से जब राग निकल जाता है तो वह ज्ञानीपुरुष पर आ जाता है। लेकिन वह राग भी कैसा? प्रशस्त राग। जिन ज्ञानी ने ज्ञान दिया उन ज्ञानी पर राग या फिर उन्होंने शास्त्र बताए हों तो शास्त्रों पर राग! अत: आत्मा से संबंधित जो साधन हैं, उन पर जो राग रहता है, वह प्रशस्त राग है। और वह राग धीरे-धीरे कम होते-होते अंत में जब खत्म हो जाता है तब वीतराग बन जाता है। जो राग ज्ञानीपुरुष और बाकी सब पर आ जाता है, अंत में वह भी निकालना तो पड़ेगा ही न कभी न कभी?

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा नहीं है दादा कि जहाँ राग होता है वहाँ पर द्वेष होता ही है?

दादाश्री : वह अगर पौद्गलिक राग होगा तो द्वेष होगा। इसे प्रशस्त राग कहा जाता है, इसमें उसे द्वेष नहीं रहता। प्रशस्त राग, वह द्वेष वाला नहीं होता। यह राग अद्भुत राग है और यही राग मोक्ष दिलवाता है। प्रशस्त राग तो ज्ञानीपुरुष के प्रति होता है।

प्रश्नकर्ता : वह राग नहीं अपितु प्रेम है।

दादाश्री : वह प्रेम भी प्रशस्त राग कहलाता है। वह यदि हो गया तो काम हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग का शब्दार्थ क्या है? वह समझाइए।

दादाश्री : वह तो बहुत उच्च प्रकार का राग है। वह ऐसा राग कहलाता है जिससे बंधन नहीं होता। जिसके फलस्वरूप बंधन नहीं आता। बाकी सभी प्रकार के राग से बंधन होता है। यह राग मुक्ति दिलवाता है।

दादा कभी भी भुलाए न जा सकें, वही है प्रशस्त राग। दादा कभी भी भुलाए न जा सकें, ऐसा होता है किसी को? उँगली उठाओ, देखते हैं। एक-दो-तीन... सभी को होता है ऐसा? क्या बात है? ये कभी भी भुलाए नहीं जा सकते। दादा को नहीं भुलाया तो वह आत्मा को न भुलाने के बराबर है क्योंकि ज्ञानीपुरुष ही खुद का आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : आपके पास न आएँ तो लगता है कि कुछ कमी है।

दादाश्री : जब तक खुद के आत्मा का स्पष्ट अनुभव नहीं है तब तक ज्ञानीपुरुष ही खुद का आत्मा है और उनके पास रहा तो उसमें सबकुछ आ जाएगा। बहुत आसान बात है न! मुश्किल नहीं है।

ज्ञानी के लिए बावरापन

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी को देखते रहने से मुक्ति मिलती है, इसका मतलब क्या है?

दादाश्री : जिन्हें देखते हैं, उसी रूप होते जाते हैं। निरीक्षण करते रहने से उसी रूप होते जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : दूसरों को सामान्य रूप से देखते हैं तो उनमें शुद्धात्मा भाव दिखाई देता है। आपके लिए वह विचार ही नहीं आता। मन आपके शरीर पर ही चिपक जाता है।

दादाश्री : ये देह सहित पूर्ण शुद्धात्मा कहे जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : हमें आपके प्रति अत्यंत भाव हो जाता है तब आपके लिए बावरापन हो जाता है तो ऐसा करने से जो मूल वस्तु प्राप्त करनी है, वह तो एक तरफ नहीं रह जाएगी?

दादाश्री : नहीं, नहीं। बावरापन नहीं है। बावरापन आपको, खुद को समझ में आता है। खुद आत्मा है, फिर क्या बावरापन समझ में नहीं आएगा?

प्रश्नकर्ता : गौतम स्वामी के साथ क्यों ऐसा हुआ था?

दादाश्री : वह हुआ था लेकिन उसकी वजह से ज्ञान में विलंब हो सकता है लेकिन ज्ञान चला नहीं जाएगा। ज्ञान में विलंब हो सकता है लेकिन वह प्रशस्त राग कहलाता है। प्रशस्त राग का फल क्या है? वीतरागता। यह जो सांसारिक राग है न, उसका फल राग-द्वेष है।

अत: वीतद्वेष होने के बाद कौन सा राग बचता है? प्रशस्त राग बचता है। जो राग मोक्ष का प्रत्यक्ष कारण है। उसमें सांसारिक राग का छींटा तक नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रशस्त राग आसानी से खत्म हो जाता है?

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है। अगर प्रशस्त राग न जाए तो भी हर्ज नहीं है क्योंकि वह मोक्ष दिलवाकर ही दम लेता है। अत: इस बारे में कोई चिंता नहीं करनी है। प्रशस्त राग, जैसा गौतम स्वामी को महावीर भगवान के प्रति था। वह अगर अभी नहीं हो रहा है तो कुछ समय बाद अपने आप ही विलय हो जाएगा, विलय होता ही रहेगा।

प्रश्नकर्ता : उससे तो उनका मोक्ष रुक गया, गौतम स्वामी का।

दादाश्री : उसे क्या 'रुकना' कहा जाएगा? छ: या बारह साल बाद होगा, पंद्रह साल बाद होगा, अगले जन्म में हो जाएगा। इस प्रशस्त राग का डर नहीं है, सांसारिक राग का डर है। प्रशस्त राग चाहे कितना भी हो, उसके प्रति भय रखने जैसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग की वजह से केवलज्ञान नहीं हो सकता न?

दादाश्री : हमें केवलज्ञान की क्या जल्दी है? कहना, 'तुझे आना हो तो आना'। ऐसा है न, हम ट्रेन में बैठ गए हैं न! केवलज्ञान तो

सब से अंतिम स्टेशन है। अपने आप ही आएगा। उसकी क्या जल्दी है? केवलज्ञान तो हाथ में आ ही गया समझो, ऐसा है। जब से स्पष्ट वेदन हुआ न तभी से वह केवलज्ञान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान नहीं लेकिन ज्ञान तो रुक जाएगा न?

दादाश्री : नहीं। ज्ञान तो नहीं रुकेगा। ज्ञान तो बल्कि बढ़ेगा। ऐसा है न कि ऐसा किसे होता है? बाहर बहुत ही उलझन में पड़ा हुआ कोई इंसान हो और, उसे जब ऐसा हो जाए तब फिर वे सब उलझनें सुलझ जाती हैं और एक ही दृष्टि हो जाती है। हर एक को ऐसा नहीं होता। जो बाहर दुनिया में बहुत डूब चुका है, बाहर बहुत जगहों पर उसका चित्त चिपका हुआ हो न तो जब यहाँ पर चिपकता है तो बाहर सभी जगह से उखड़ जाता है। अहितकारी नहीं है यह। इसे प्रशस्त राग कहा गया है। ज़्यादातर यह राग तो उत्पन्न ही नहीं होता। अगर हो जाए तो उत्तम कार्य करता है।

प्रश्नकर्ता : क्या ज्ञानी पर प्रशस्त राग के अलावा पौद्गलिक राग भी उत्पन्न हो सकता है?

दादाश्री : पौद्गलिक राग तो हमेशा उखड़ ही जाता है। वह राग चिपकता है, *पुद्गल* से चिपकता है लेकिन फिर उखड़ जाता है, अंत में फिर प्रशस्त राग के रूप में ही रहता है। ऐसा हुआ है, पहले भी हुआ ही है न? यह कोई नई चीज़ नहीं है।

ऐसा होता है लेकिन अंत में बाकी सभी जगहों से छूट जाता है। बाकी सभी जगह जो झाड़ियाँ होती हैं न सारी, उन सब में से छूट जाता है और एक ही जगह पर आ जाता है। इसलिए इसे लोगों ने सब से अच्छा साधन माना है, प्रशस्त राग को। बाकी सब झाड़ियाँ वगैरह सबकुछ उखड़ जाता है।

प्रशस्त राग, वह स्टेपिंग है

प्रशस्त राग अर्थात् मोक्ष दिलवाने वाला राग। स्टेप्स चढ़ाता है यह राग। द्वेष को यों ही उड़ा देता है, फर्स्ट स्टेप से ही। अर्थात् सभी

का हम पर राग है तो सही लेकिन वह प्रशस्त राग कहलाता है, वह सांसारिक राग नहीं है। उसमें सांसारिक भाव नहीं है, भौतिक नहीं है।

प्रशस्त राग और प्रशस्त मोह

यह प्रशस्त राग तो निरंतर रखने योग्य है। प्रशस्त अर्थात् ऐसा राग जो अहितकारी नहीं है, हितकारी है। ऐसा राग जिसकी ज्ञानियों ने प्रशंसा की है और अप्रशस्त अर्थात् अहितकारी, संसार में भटकाने वाला।

प्रश्नकर्ता : राग और प्रशस्त राग में क्या फर्क है?

दादाश्री : प्रशस्त राग मोक्ष में ले जाने वाला राग है और यह सांसारिक राग संसार में डुबाने वाला राग है। जो राग भौतिक सुख के लिए होता है, वह राग कहलाता है और भौतिक छोड़ने के लिए जो राग किया जाता है, वह प्रशस्त राग है।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग और प्रशस्त मोह में क्या फर्क है?

दादाश्री : प्रशस्त राग जा सकता है, धुल जाता है। मोह धुलने में ज़रा देर लगती है। राग चिपकाई हुई चीज़ है और मोह चिपकी हुई चीज़ है। फिर यह तो छूट जाता है, इस राग के बाद चिपचिपाहट नहीं रहती। क्या प्रशस्त राग में चिपचिपाहट है कहीं पर? सांसारिक राग गाढ़ होता है जबकि प्रशस्त राग गाढ़ नहीं होता।

ज्ञानी की भक्ति, वह शुद्ध लोभ

प्रश्नकर्ता : दादा के प्रति भक्ति के भाव होते हैं, अत्यंत भक्ति भाव आता है तो उसे किसमें रखेंगे? क्रोध-मान-माया-लोभ में से किसमें रखेंगे?

दादाश्री : यह लोभ में जाएगा। सिर्फ लोभ में ही।

प्रश्नकर्ता : वह प्रशस्त राग नहीं है, दादा? वह क्रोध-मान-माया-लोभ में कैसे आएगा? प्रशस्त राग हुआ है न महात्माओं को।

दादाश्री : तो लोभ ही है न?

प्रश्नकर्ता : लोभ! ठीक है।

दादाश्री : कपट वाला लोभ नहीं है। असल में जो राग होता है उसमें कपट और लोभ दोनों साथ में हैं। यह प्रशस्त राग तो सिर्फ लोभ ही है।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष का लोभ?

दादाश्री : लोभ।

प्रश्नकर्ता : इन महात्माओं को जगत् कल्याण की भावना होती रहती है, अंदर जो ऐसा रहता है वह क्या है?

दादाश्री : इसका अर्थ सिर्फ इतना ही है कि जिसका खुद का कल्याण हो जाता है, उसी को ऐसा विचार आता है। वर्ना किसी को ऐसा विचार आया ही नहीं इस दुनिया में। औरों को तो ऐसा विचार आएगा ही कैसे? अरे, उसके घर में ही बेहद झंझट होती है! सिर्फ कृपालुदेव को आए थे ऐसे विचार, अपने साधु-संन्यासियों को भी नहीं। क्योंकि वे लोग अपने शिष्यों से ही परेशान हो चुके हैं। क्या करें?

प्रश्नकर्ता : यह जो जगत् कल्याण का भाव होता है, वह भी लोभ कहलाता है?

दादाश्री : हाँ, वह भी लोभ है न। एक प्रकार का राग है न, प्रशस्त राग। जिसका खुद का कल्याण हो चुका है, वह ऐसा सब खोजता है। अब ये लड़के, सभी ब्रह्मचारी पूरे दिन यही करते हैं। ओहोहो... ऐसे लोग तो हैं ही नहीं। लोग आफरीन हो जाते हैं उन्हें देखकर क्योंकि ये वे हैं जिन्हें कुछ भी नहीं चाहिए, जिन्हें कुछ भी लाभ नहीं उठाना!

प्रश्नकर्ता : दादा! तो अभी अगर इन महात्माओं को ऐसा लोभ है तो वह अच्छा है न? यह प्रशस्त राग वाला लोभ?

दादाश्री : यह लोभ करने से, बाकी सभी में से आपकी वृत्तियाँ उठ जाएँगी और वृत्तियाँ एक ही जगह पर चिपक जाएँगी। दादा पर चिपक जाएँगी तो दादा अगले जन्म में काम आएँगे। उसमें क्या बिगड़

जाएगा! अत: वे वृत्तियाँ उठ जाएँगी, वृत्तियाँ दूसरी जगह पर बहुत नहीं जाएँगी। न जाएँ तो बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग होने पर दूसरी सभी वृत्तियाँ बिल्कुल टूट जाती हैं?

दादाश्री : टूट जाती हैं इसलिए हम कहते हैं न कि प्रशस्त राग करना भाई और सिर्फ वही एक राग बिल्कुल खुले तौर पर करना भाई! उसमें हर्ज नहीं है।

अगर ऐसे उपकारी पर प्रशस्त राग नहीं होगा तो कहाँ पर होगा? गौतम स्वामी को भगवान पर प्रशस्त राग क्यों था, क्योंकि भगवान महावीर का उपकार था। ज़बरदस्त उपकार था। उन्हें बुलाकर मोक्षमार्ग दिया था। गणधर पद दिया। फिर भगवान ने यह राग छुड़वाने के लिए उन्हें बाहर भेज दिया। वह उपकार था। फिर अंदर लगा कि यह इतना बड़ा राग अंदर घुस गया है। 'तू प्रमाद छोड़! छोड़!' फिर भगवान ने चमत्कार किया, बाहर भेज दिया और फिर उनका (महावीर भगवान का) निर्वाण हो गया। तब गौतम स्वामी को तुरंत ही ऐसा लगा कि ''अरे! उन्हें अंदर धक्का लगा कि 'भगवान ने ऐसा किया!' उन्हें ऐसा लगा कि क्या भगवान ऐसा कार्य करें...'' फिर जब लगा कि 'भगवान तो ऐसी भूल नहीं कर सकते'। यह तो, मुझ से भूल हो रही है। जाँच की तो पता चला कि 'ओहोहो! वे तो वीतराग थे और यह राग तो मुझे ही है इसलिए भगवान मेरे इस राग को निकालने के लिए कहकर गए हैं। फिर उन्हें केवलज्ञान हो गया, केवलज्ञान प्रकट हो गया। इसी वजह से रुका हुआ था।

प्रश्नकर्ता : दादा, हमारा यह प्रशस्त राग भी अंतिम घड़ी में चला जाएगा न? आखिर में चला जाएगा न?

दादाश्री : वहाँ पर छूट जाएगा। वहाँ पर सीमंधर स्वामी के दर्शन करते ही पूरा उखड़ जाएगा। यह तो ऐसा है कि अगर यहाँ पर इससे उच्च दर्शन करने को मिल जाएँ तो अभी भी उखड़ सकता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सीमंधर स्वामी के पास जाने के लिए तो हमें इस राग को चिपकाकर रखना पड़ेगा न?

दादाश्री : वह तो चिपका ही रहेगा। इसे उखाड़ने जाओगे तो भी नहीं उखड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : बाद में जब वहाँ सीमंधर स्वामी के पास जाएँगे तब भले ही उखड़ जाए।

दादाश्री : अपने आप उखड़ जाएगा। उससे आपको कोई लेना-देना नहीं है। बाहरी (राग) उखड़ जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यहाँ पर चिपकेगा तो फिर बाहरी उखड़ ही जाएगा।

दादाश्री : बाहरी चिपका रहेगा न तो फिर वापस एक जन्म लेने के लिए आना पड़ेगा। उसकी वजह से हम चूक जाएँगे!

भगवान ने भी प्रशंसा की है प्रशस्त राग की

प्रश्नकर्ता : अतः दादा पर जो राग हो जाता है तो वह राग तो ज़रूरी है।

दादाश्री : वह तो होगा ही न! वह राग तो काम का है। वह राग तो निरालंब होने तक काम का है। वह अवलंबन है, अंतिम और जब यहाँ पर यह राग होगा तब दूसरी जगह पर बंद हो जाएगा। एक ही जगह पर रह सकता है इंसान। यहाँ पर है तो वहाँ पर नहीं हो सकता, और वहाँ पर है तो यहाँ पर नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा ही होता है। ऐसा ही हुआ है अब तो। यहाँ पर राग हो गया है इसलिए बाकी का सारा राग खत्म ही हो गया है।

दादाश्री : इसलिए भगवान ने भी इस प्रशस्त राग की प्रशंसा की है क्योंकि इससे बाकी के सब राग खत्म हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन फिर भी व्यवहार में रहते हैं तो ऐसा लगता है कि कोई हमें खींच रहा है, खिंचना पड़ता है।

दादाश्री : खिंचने का कोई अर्थ नहीं है। वह *निकाली* चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन पहले राग था न वहाँ पर।

दादाश्री : खत्म हो गया। इसलिए अब आपको लगता है कि गले पड़ गया है। मान देते हैं तो भी भार जैसा लगता है।

प्रश्नकर्ता : हं.... ऐसा ही लगता है।

दादाश्री : मान देते हैं तब भी अच्छा नहीं लगता अब तो। चंदू भाई को, 'चंदू भाई साहब, हमारे यहाँ पधारिए, पधारिए' तो भी आपको अंदर अच्छा नहीं लगता। कहते हैं, 'अरे, वापस यह क्या दखल? और पहले जो मीठा लगता था, वही अब अच्छा नहीं लगता'।

वीतराग के प्रति प्रस्थान

प्रश्नकर्ता : राग से क्या होता है?

दादाश्री : मूर्च्छा आ जाती है। मूर्च्छा, मूर्छित! राग का फल मूर्च्छा है और द्वेष का फल भय। जब ये दोनों चले जाएँगे तब वीतराग हो जाएगा। तब तक वीतराग नहीं हो सकता। अपने महात्मा वीतराग होने की तैयारी कर रहे हैं। कोई पूछे कि इनमें से कुछ हो चुके हैं? तो कहेंगे, 'हाँ हो चुके हैं। वीतद्वेष हो चुके हैं'।

अब वीतराग बनना है। दो था, उनमें से अब एक कम हो गया। तो कहते हैं, 'वीतद्वेष बन जाने के बाद राग कहाँ रहा?' तो कहते हैं 'ज्ञानी पर राग होता है। ज्ञानी पर, महात्माओं पर, तो इस संसार पर से राग उठ गया और यहाँ घुस गया लेकिन यह राग प्रशस्त राग कहलाता है'।

यह प्रशस्त राग वीतरागता का कारण है। सिर्फ यही एक राग ऐसा है जो वीतराग बनाता है। अपने इन सभी महात्माओं पर आपको राग है या नहीं है?

प्रश्नकर्ता : है।

दादाश्री : जो ज्ञानीपुरुष पर होता है, महात्माओं पर होता है, वह राग हितकारी है। उस प्रशस्त राग का फल क्या है? 'वीतराग'। इसी का फल आएगा। यों ही, बाकी कुछ नहीं करना है, इसी का फल। हमने बीज डाला है, मक्की का दाना बोया, पानी डाला, वह सब डाला फिर भुट्टा अपने आप लगता है या उसमें हमें बनाना पड़ता है?

ज्ञानी ही तेरा आत्मा

प्रशस्त राग अर्थात् सर्व दु:खों से मुक्त करवाने वाला राग। सर्व दु:खों का, सांसारिक दु:खों का अभाव करवाने वाला वह राग! आपका द्वेष छूट गया है लेकिन आपका राग नहीं छूटा है। वह राग जो सभी जगह चिपका हुआ है न, वह वहाँ से मुझ पर आ जाता है। वह राग दु:खदाई लगता है इसलिए कहता है, 'दादा पर जो राग है, वह?' वह तो प्रशस्त राग कहलाता है। जो राग प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है! अगर ज्ञानीपुरुष पर राग हो जाए तो अच्छा है न! फिर सारी झंझट छूट जाएगी!

और कृपालुदेव ने वापस इसका ताल बिठा दिया कि 'सत्पुरुष ही तेरा आत्मा है।' अर्थात् यह पानी भी वहीं पर जाता है! सभी तरह से ताल मिल जाते हैं!

ज्ञान मिलते ही दादा पर राग

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने कहा है न कि गौतम स्वामी का केवलज्ञान प्रशस्त राग की वजह से ही रुक गया था!

दादाश्री : हाँ। और नहीं तो क्या? उस राग की वजह से रुक जाए तो हर्ज नहीं है। पाँच जन्मों तक उस राग की वजह से रुक जाए तो भी हर्ज नहीं है। इस राग जैसा और कोई राग है ही नहीं दुनिया में। फिर संसार के दूसरे सारे भूत नहीं घुसते न! और यह राग तो बहुत हितकारी है लेकिन वह राग (किसी को) होता ही नहीं है न! इसका होना मुश्किल है!! वह तो, यह अक्रम विज्ञान है, इसलिए

पहले एकदम से ठंडक हो जाती है इसलिए तुरंत ही दादा पर राग हो जाता है, नहीं तो राग होगा ही नहीं। उसको बिठा-बिठाकर चिपकाएँ तो भी नहीं चिपकेगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके पास आने के बाद लगभग कई लोगों को ऐसा अनुभव होता है। अंदर शांति हो जाती है इसलिए फिर राग हो जाता है।

दादाश्री : जब शांति होने पर हमेशा राग हो ही जाता है। संसार में भी जो सारा राग हो जाता है न, वह शांति की वजह से ही होता है लेकिन वह शांति आसक्ति वाली शांति है। वह कुछ समय तक रहने के बाद फिर चली जाती है। तब फिर से झगड़ता है। जबकि यह जो राग है उसमें अन्य कुछ भी नहीं है न! यह तो आश्चर्य है इस काल का। यदि समझ जाए तो काम निकाल लेगा और अगर आड़ा चले तो उल्टा भी हो सकता है। किसी भी काल में प्रशस्त राग हुआ ही नहीं न! यदि हुआ होता तो आज यह दशा ही नहीं होती न!

प्रशस्त राग ही इस काल में मोक्ष

यह जो प्रशस्त राग है, वह वीतद्वेष कहलाता है लेकिन वीतराग नहीं कहलाता। वीतराग तो, जब यह प्रशस्त राग भी खत्म हो जाएगा उसके बाद में आएगा। प्रशस्त राग तो इस काल में बहुत हितकारी है। यह प्रशस्त राग रहे न तो समझना कि अपना मोक्ष हो गया क्योंकि यह सभी रागों को तोड़ देता है। बाहर के सभी मौज-मज़े, सभी रागों को तोड़ देता है यह राग। अत: यह जो प्रशस्त राग उत्पन्न हुआ है, इसे इस काल में मोक्ष कहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : प्रशस्त राग का कार्य क्या है?

दादाश्री : प्रशस्त राग दूसरी जगहों से, विनाशी चीज़ों पर से राग उठा देता है और जो अविनाशी तत्त्व प्रकट हुआ है उस पर अर्थात् ज्ञानीपुरुष पर राग होने से उसका जल्दी हल आ जाता है।

प्रशस्त राग होने के बाद, यह राग वापस उखड़ जाता है। यह

राग होने के बाद वापस उखाड़ देना है। चूल्हा जलाकर, खाना बनाने के बाद बुझा देना है। खाना बन जाने के बाद बुझाना नहीं पड़ता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बुझाना पड़ता है।

दादाश्री : तो कहेंगे 'अगर बुझाना था तो जलाया क्यों?' प्रशस्त राग बैठाया है न, तो उसे उतारना पड़ा। आपका बैठा नहीं है। आपको बैठाना है। बैठ जाए तो फिर बाहर का राग बंद हो जाएगा, खत्म हो जाएगा फिर यह राग होने के बाद वापस इसमें से निकालना है, खींच लेना है। यह हल ला देगा।

परमार्थ राग से मिलते हैं ज्ञानी

प्रश्नकर्ता : आपने जो कहा है न, मैंने पहले प्रश्न पूछा था कि 'अगले जन्म में भी ज्ञानी मिलेंगे?' आपने कहा था 'ज़रूर मिलेंगे'। लेकिन दादा तो ऐसा कहते हैं कि ज्ञानी तो दस लाख सालों में एक बार आते हैं। तो फिर अगले जन्म में कहाँ से मिलेंगे ज्ञानी?

दादाश्री : जिस-जिसने हिसाब बाँध लिया है उन्हें तो मिलेंगे ही न! जिसने उनके साथ हिसाब बाँध लिया है वे। जहाँ राग किया वह छोड़ेगा क्या? मैं मना करूँ फिर भी छूटेगा नहीं और आप मना करोगे तो भी नहीं छूटेगा। इसलिए मैं कहता हूँ न, इसके लिए परेशान मत होना। घबराना नहीं।

प्रश्नकर्ता : दादा! तो क्या हम लोग पहले मिले होंगे या नहीं?

दादाश्री : हाँ, परमार्थिक राग और सांसारिक राग, इन दोनों के संबंध की वजह से मिले हैं। सांसारिक राग तो रहता ही है, लेकिन परमार्थ के लिए किया गया राग भी राग ही कहलाता है और उस राग के आधार पर परमार्थ पूर्ण होता है। राग नहीं होगा तो? अगर वीतराग हो चुके हो तो मेरे साथ रहकर आपका कोई काम पूरा नहीं होगा। अत: अंत में यह परमार्थ राग कहलाता है। यह प्रज्ञा का राग है। कभी भी बंधन नहीं आने देता और मुक्ति दिलवाता है।

जय सच्चिदानंद

दादा भगवान ना

असीम

जय जयकार हो